सिंगापुर से

[तीन अंकी नाटक]

★

लेखक :

मामा वरेरकर

अनुवादक :

रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे

परिचय

'सिंगापुर से' नामक मूल मराठी नाटक श्री मामा वरेरकर के द्वारा अपनी ६२ वीं वर्ष-गांठ के अवसर पर मराठी जनता को समर्पित किया हुआ नाटक है। भूमिका में नाटककार ने स्वयं ही स्पष्ट किया है कि यह नाटक प्रचार की दृष्टि से लिखा गया है, मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं। और नाटक के पहिले पठन दर्शन से ही यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है। आदि से अंत तक भयाकुल तथा करुणाजनक वातावरण में मनोरंजन के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं है। द्वितीय महायुद्ध के अन्तर्गत भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के हेतु जो प्रयास किये गये थे, वे न केवल रोमहर्षक थे अपितु अभूतपूर्व भी कहे जा सकते थे। राजनीति ने द्विविध रूप धारण किया था। देश के अन्दर स्वातंत्र्य-आन्दोलन तीव्रतर रूप धारण करता जा रहा था। ठीक उसी समय सुदूर पूर्व में, नेताजी सुभाष बोस की प्रेरणा तथा जापानियों की सहायता से सशस्त्र संघर्ष का एक अभिनव पर्व शुरू हो चुका था। इसी अंतिम तथा उत्सर्गोन्मुख अभियान के संबंध में प्रसूत दो भिन्न विचारधाराओं का मार्मिक चित्रण इस नाटक में किया गया है। यह तो स्वाभाविक ही है कि एक विशेष अवस्था में अभ्यस्त समाज किसी अपरिचित कल्पना को सहज स्वीकार नहीं कर पाता, और फिर अँग्रेजों की विदेशी सत्ता का कटु अनुभव जिसके पास हो, वह भारतीय जनता विदेशी जापानियों के राष्ट्रीय स्वार्थ से शंकित होकर, उन पर सहसा पूर्ण विश्वास न कर पावे, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। स्वाधीनता-प्राप्ति का उपाय परावलंबन नहीं बल्कि आत्मिक-बल संवर्धन ही हो सकता है। शस्त्र से नहीं सत्य और अहिंसा की नैतिक शक्ति

से ही हम शत्रुओं पर पूर्ण-रूपेण विजय प्राप्त कर सकते हैं, ऐसी प्रामाणिक विचार-प्रणाली उस समय भारत के अन्दर तथा बाहर एक बहुत बड़े वर्ग की थी, यह भी भुलाया नहीं जा सकता। प्रस्तुत नाटक में शान्ताराम नामक एक प्रमुख पात्र अपने नामानुसार शान्ति का प्रचारक है। स्वभावत: उसे अपनी विचार-धारा का प्रचार करना आवश्यक प्रतीत हुआ। उसकी दृष्टि में सदानंद, तारासिंह आदि नौकरशाही में पले हुए लोग गुलाम-वृत्ति के प्रतीक हैं। शान्ताराम की दृष्टि में जापानियों की सहायता पर, उनकी भलमनसाहत पर, भरोसा करना आत्मघातक है तथा विदेशी शस्त्रास्त्रों के बल पर अपनी ही जन्म-भूमि पर हमला करना देशद्रोह है। शान्ताराम को इसी वर्ग विशेष की विचारधारा का प्रतिनिधि माना जा सकता है। यदि नाटक वास्तविक जीवन का चित्रण है, तो उसमें परस्पर विरोधी दृश्यों, प्रसंगों, अनुभवों, विचारधाराओं तथा व्यक्ति-रेखाओं का दर्शन होना स्वाभाविक ही है। यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति करनेवाले कलाकार पर पक्ष-विपक्ष का आरोप करना तो व्यर्थ एवं कलाविषयक अनभिज्ञता का ही परिचायक है। मूल नाटक की भूमिका से स्पष्ट है कि किसी भी पात्र के विचारों की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेना वरेरकर जी को मंजूर नहीं है। तथापि पूरा नाटक पढ़ने अथवा देखने पर जो सत्य पाठक या दर्शक ग्रहण कर पाते हैं वह यही है कि नाटककार का अपने देश की सर्वविश्रुत सत्य-अहिंसात्मिका वृत्ति के प्रति विशेष आकर्षण है। फलतः उसी तत्व का उसने विशद रूप से इस नाटक में समर्थन किया है।

वैसे तो मामा वरेरकर मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं, परंतु जनसेवा की ज्वलंत भावना से जीवन-भर साहित्य का निर्माण करनेवाला साहित्यकार केवल प्रादेशिकता में बँधा नहीं रह सकता। वरेरकर जी के उपन्यास तथा नाटकों ने विगत अर्ध-शताब्दि में जागृत प्रहरी की भाँति

भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक विचारधारा के प्रति सजगता दिखाई है। यही कारण है कि उनकी कला-कृतियों के विभिन्न भारतीय भाषाओं में होनेवाले अनुवाद लोकप्रिय एवं सम्मानित होते आये हैं।

श्री सर्वटे जी की अनुवाद-कुशल लेखनी का क्या कहना कि जो मूल कलाकृति की भाषा-भिन्नता की कल्पना तक पाठक के मस्तिष्क को छूने नहीं देती। 'सिंगापुर से' नाटक का पाठक तथा दर्शक स्वयं ही इस तथ्य का अनुभव कर सकता है।

महिला महाविद्यालय,
जबलपुर

प्राचार्य गो० मो० रानडे,
एम० ए०, बी० टी०

पहिला अंक

[पिछले महायुद्ध के समय का सिंगापुर। उस समय के सिंगापुर के एक आधुनिक घर का बैठकखाना। बैठकखाने में रखे फर्नीचर तथा अन्य सामान से ऐसा आभासित होता है कि उस घर का मालिक काफी धनी है। साफ दिख रहा है कि सामान की मूल सजावट अँग्रेजी-ढंग की है, पर उस पर अब जापानी छाप पड़ गयी है। दीवार पर टँगे चित्रों में कुछ जापानी और कुछ भारतीय हैं। एक कोने में रेडियो रखा है। जब परदा उठता है, उस समय घर का स्वामी सदानंद पुस्तक हाथ में लिये आराम कुर्सी पर बैठा पढ़ रहा है। उसकी उम्र पैंतीस के आस-पास है। मुद्रा तेजस्वी है, पर चेहरे पर असमय बुढ़ापे की रेखायें अंकित दिख रही हैं। वह पढ़ रहा है इसी समय उसकी छोटी बहिन अमला प्रवेश करती है। उसकी उम्र है यही कोई बीस वर्ष। दिखने में ऐसे ठीक है पर सुन्दर नहीं। स्वभाव से जिंदा-दिल, प्रसन्न-वदन, सदा हँसने वाली; फिर हँसने के लिए कोई कारण हो चाहे न हो। प्रवेश करती है, सो भी हँसते हुए ही। कुर्सी के पीछे से जाकर सदानंद के कन्धे पर हाथ रखती है।]

अमला : *सब तैयारी हो गयी*—(उसे झकझोरकर)—*पुस्तक छोड़ो भी अब। तुम दिन-रात यूँ पढ़ते रहोगे तो मैं किससे बातें करूँगी?*

सदानंद : *अब तेरी मौसी आ रही है न? वह आयी कि बस करना उससे खूब बातें। उसके पास भी बातें करने के लिए बहुत विषय रहेंगे। रंगून से जो आ रही है वह—लड़ाई के वक्त वहीं थी—उस समय की बहुत-सी मज़ेदार बातें वह तुम्हें बताना चाहेगी—*

अमला : (उसके सामने आकर बैठ जाती है) *मजेदार बातें ? क्या वे मजेदार बातें है ? खत पढ़ थे उसके ? तुम मर्दों की यही रीति है । सारा सत्यानाश हो जाय, फिर भी तुम्हें वह मजेदार ही मालूम होता है ! इसीलिए क्या तुमने यह सत्यानाश शुरू किया है ?*

सदानंद : *हमने ?—कौन हम ?—कहाँ के हम ?—*

अमला : *हाँ, तुम—तुम मर्दों ने—कहीं के भी हों ! मर्द ही तो कर रहे हैं यह सत्यानाश ।*

सदानंद : *चीन की लड़ाई पर गयी थी ? रूस गयी थी ? क्या वहाँ के वृत्तान्त भी पढ़े है कभी ? वहाँ औरतें लड़ रही हैं, समझी ?*

अमला : *हाँ, औरतें लड़ रही है । मर्दों ने जो बरबादी मचा रखी है उसका सत्यानाश करने के लिए औरतें लड़ रही हैं । किसने शुरू किया है यह सत्यानाश ? क्या औरतों ने ? कहीं की औरत का क्या थोड़ा-सा भी हाथ था यह सत्यानाश शुरू करने में ? सुना है जिसने यह सत्यानाश शुरू किया है, वह ब्रह्मचारी है । क्या वह स्त्री-द्वेष्टा है, यह मै नहीं जानती । पर स्त्री-द्वेष्टा न होता तो विध्वंस की यह आग वह कभी न भड़काता । मजेदार कहते हो ?—यहाँ सब तरफ शान्ति छा गयी है, इसीलिए तुम्हें मजेदार मालूम होता है······*

सदानंद : *अब बन्द कर ये बातें । कितनी गंभीर हो गयी है एकदम ? हँसते-हँसते एकाएक कैसे मुरझा गयी । अब मौसी आ रही है । कम-से-कम उसके सामने ऐसा कुछ न कह बैठना । दुःखी है बेचारी । कितने दिन हो गये हम रंगून गये थे ? उस समय तू तो बिल्कुल इत्ती-सी थी । उस वक्त माँ जिन्दा थी । अब उसकी जगह*

मौसी ही है ! वैसे उम्र में वह अपनी माँ नहीं जँचेगी—मुझे तो बहिन जैसी ही लगती है। वह बड़ी, तू छोटी। मुझे लगता है, शान्तू चाचा भी मुझ से अधिक-से-अधिक चार-पाँच साल ही बड़े होंगे—अच्छा हुआ जो यह आवागमन फिर खुल गया। अब कम-से-कम उन लोगों से मुलाकात तो हो जायगी। अब मैं उन्हें यहीं रख लेनेवाला हूँ।

अमला : *पर वे रहें तब न। मौसी के खत से तो लगता है कि वे लोग यहाँ अधिक दिन नहीं रहेंगे। शायद वे और कहीं जाने की सोच रहे हैं। खत में साफ-साफ लिखा नहीं। इसलिए कोई ठीक पता नहीं चलता।*

सदानंद : *तारासिंह नहीं आया ?*

अमला : *अचानक कैसे याद हो आयी उसकी ?*

सदानंद : *तू भूल गयी इसलिए।*

अमला : (ठहाका मारकर) *मैं कैसे भूलूँगी उसे ? भुलक्कड़ तो वही है एक नम्बर का। कहते है सिक्ख लोग बड़े कड़वे होते हैं। परंतु वह तो सिंगापुर के अनानास की तरह बिल्कुल मीठा हो गया है। बाप फौज में था और ये हज़रत तलवार पकड़ना भी पसंद नहीं करते। इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता है वह।*

सदानंद : *तुझे कायर अच्छे लगते हैं शायद ?*

अमला : *कायर ? जब चिढ़ जाता है तब देखो उसे। उकेदा और उसकी लड़ाई नहीं देखी तुमने। दोनों जियु-जित्सुवाले थे। दोनों एक दूसरे के लिए भारी थे। दोनों में से एक भी पीछे नहीं हटा। उस समय देखते तारा का चेहरा !*

सदानंद : *तू ही उसे बदनाम करती है और तू ही अब उसकी*

तारीफ़ कर रही है। तेरी बात का कोई ठिकाना ही नहीं (अमला हँसती है।) *हँसती क्यों है? तेरी राय तो हर दिन बदलती है। पहले उस केप्टन मुकरजी के साथ घूमा करती थी। फिर उसे बंगाली रसगुल्ला कहने लगीं। कुछ दिनों तक उस पवार के पीछे पड़ी थी। अब तुझे यह तारासिंग अच्छा लगने लगा। क्यों नचा रही है उस गरीब को?*

अमला : *तो फिर क्या करूँ? तुम तो हमेशा किताब में सिर घुसेड़े रहते हो। कोई बातें करने के लिए भी तो हो। बच्चे जब नये खिलौने माँगते हैं, तो तुम लोगों को बड़ी खुशी होती है। अगर वे न भी माँगें, तो भी उन्हें जान-बूझकर नये खिलौने ला देते हो। तुम ही तो ला देते थे न, मेरे लिए नया-नया खिलौना। अब क्यों झीखते हो? उन्हीं की तरह इन खिलौनों को भी मैं तोड़-ताड़कर फेंक देती हूँ। मुझे इसका दु:ख नहीं होता। वह एक पगला आत्म-हत्या करने जा रहा था—*

सदानंद : *कौन?*

अमला : *वह डाक्टर—खानदेशी था शायद? मैंने कहा, जा मर! अब किसी चीनी औरत से शादी करके गृहस्थी सजा ली है मुए ने—*

[शान्ताराम और सावित्री प्रवेश करते हैं। दोनों के हाथों में सूट-केस और होल्ड-आल हैं। दोनों भीतर आते ही जैसे चौंककर ठिठक जाते हैं। शान्ताराम की उम्र करीब ४० वर्ष। मुद्रा भौंचक्की-सी। उसने सब प्रकार के क्लेश सहन किये हैं, ऐसी छाया उसके चेहरे पर स्पष्ट दिख रही है। सावित्री की उम्र ३५ के आस-पास है। उसकी मुद्रा भी भौंचक्की-सी है। दोनों की आहट पाते ही, पहले अमला और फिर सदानन्द दौड़कर उनका स्वागत करते हैं और उनके हाथ से सामान ले लेते हैं।]

अमला : (सावित्री ते लिपटकर)—*मौसी !*

सावित्री : (गद्गद् होकर) *अमू ! मेरी अमू ! बेटी ! देखा मेरी अमू को ?*

शान्ताराम : *यह तो काफी बड़ी हो गयी है अब । इस सफर में बड़ी तकलीफ हुई । सारा जमाना ही बदल गया है—सुख और दुःख की सीमायें ही निश्चित नहीं की जा सकतीं । हजारों सवाल पूछ रहा था वह जापानी । वह अँग्रेजी ठीक से नहीं समझता था, इसलिए भाषा बदलकर मैं ब्रह्मी में बातें करने लगा । तब तो उसे और भी अधिक शक हुआ । वहाँ एक सिक्ख था । वह जब दौड़कर बीच-बचाव करने आया; तब कहीं उस आफत से हमें छुट्टी मिली !*

सदानंद : *बैठिये न । चाय बुलवाऊँ ?*

शान्ताराम : *हम चाय नहीं पीते । वहाँ थोड़ा दूध मिल गया था । अब एकदम खाने पर ही बैठेंगे । यह बहुत थक गयी है*—(सावित्री से) *अब तो अच्छा लगता है न ?* (सावित्री गर्दन के इशारे से 'हाँ कहती है) *वह गड़बड़ जब शुरू हुई तो एकदम यह बेहोश हो गयी । बड़ी नाजुक हो गयी है इसकी सेहत । जरा भी कहीं आवाज हुई कि एकदम घबड़ाकर मूर्छित हो जाती है—हाँ, तो यह है अमू ! आज हमारी नलू जिन्दा होती*—(सावित्री को एकदम सिसकी आती है ।) *अच्छा-अच्छा छोड़ो वह बात ! बड़ी मुश्किल है । दुःख की कोई भी बात इसके सामने निकाल ही नहीं सकते । तुम्हारा क्या हाल-चाल है, सदू ?*

सदानंद : *अच्छा है । नये शासन में अब नयी नौकरी मिल गयी है । नौकरी में कोई तकलीफ नहीं । सेंसर आफिस में हूँ । हिन्दी और मराठी का पत्र-व्यवहार देखना पड़ता है ।*

शान्ताराम : (दयनीयता से हँसकर)—चलो, यह ठीक हो गया—

अमला : अब आप लोग यहीं रहेंगे न, शान्तू काका ?

शान्ताराम : अब सिर्फ काका ही कहो मुझे। जाने किसने मेरा नाम शान्ताराम रख दिया ! जिन्दगी-भर मुझे शान्ति और आराम मिला ही नहीं ! और अब तो हद हो गयी ! सारे दुःखों की चरम सीमा······

सावित्री : अब चुप भी रहिए ! कुछ न बोलिए। वह सब भुला देने के लिए ही तो हम लोग यहाँ आये हैं न ?—(अमला से लिपटकर) अब यही है मेरी नलू—सोचूँगी कि वही एकदम बड़ी हो गयी है। जीजी भी बचपन में ठीक ऐसी ही दिखती थी। वही नाक-नक्शा है न इसका ? अपनी मौसी पर ही पड़ी थी हमारी नलू। मेरी नलू ! (एकदम सिसकियाँ आती हैं और अमला को कसकर बाहों में भर लेती है।)

अमला : हाँ, यहीं तो हूँ मैं ! माँ—माँ !—

सावित्री : माँ ! माँ !! तूने मुझे माँ कहा ? (किंचित हँसकर) मुझे माँ कहती जा—सुना अमू ?—मुझे माँ ही कहना। मैं तेरी मौसी नहीं। है न ? (शान्ताराम से) क्यों जी, मैं इसकी माँ ही हूँ न ?

शान्ताराम : हाँ, माँ ही तो हो। (गहरी साँस भरकर) माँ नहीं तो और क्या ? उसे भी माँ नहीं और तुम्हारे बेटी नहीं। दोनों एक दूसरे की कमी को पूरा करो। इस विध्वंस का पंजा जहाँ-जहाँ पड़ेगा, वहाँ-वहाँ अब खामियाँ पैदा होनेवाली हैं। लड़का है, तो बाप न रहेगा। बाप है, तो लड़का न रहेगा। घर है, तो उसमें मनुष्य नहीं; मनुष्य है, तो घर नहीं-अन्न है, तो पैसा नदारद पैसा है तो अन्न नदारद-ऐसी उलटी-सुलटी खामियां पैदा होनेवाली हैं अब !

उन्हें किस तरह पूरा किया जाय, यही सवाल है हमारे सामने- (एकदम रुककर थोड़ा हँसकर) *माँ कह, या कि मौसी कह, पर अब इसे यहाँ से ले जा। नहा-धोकर जरा ताजी हो जाने दे इसे। बाद में मैं नहाऊँगा आराम से।*

[अमला सावित्री को लेकर भीतर जाती है। जिस दरवाजे से वह गयी है उसकी ओर शान्ताराम क्षणभर देखता रहता है और बाद में एक दीर्घ निश्वास लेता है।]

शान्ताराम : *अब नहा-धोकर क्या खाक साफ होंगे? भीतर-बाहर दोनों ओर से गन्दा हो गया हूँ। भीतर और बाहर इस विध्वंस की धूल की तहें चढ़कर रोगन बन गयी हैं, इसकी तुम्हें कोई कल्पना नहीं, सदानंद—*

सदानंद : *सचमुच मुझे कोई कल्पना नहीं-न मुझे उस कल्पना की जरूरत है। अब उस तरह की बातें मैं बिल्कुल नहीं सुनना चाहता। आराम के लिए आप आये हैं—*

शान्ताराम : *न जाने किस लिए आया हूँ? पर आया जरूर हूँ। आने की इच्छा हुई, इसलिए नहीं आया। यदि तुम्हें यह लग रहा हो कि तुम दोनों का स्नेह मुझे यहाँ खींच लाया है, तो वह तुम्हारी भूल है। अब किसी से भी मुझे प्यार नहीं रहा—अपने प्राणों से भी नहीं। चलते-फिरते मुर्दे हो गये हैं हम दोनों—न दिमाग है, न कलेजा! न जाने यह शरीर कैसे चल रहा है? मरे नहीं हैं, इसलिए जी रहे हैं। भविष्य में क्या होगा, भगवान जाने!*

सदानंद : *अब उसके बारे में कुछ सोचिये ही नहीं। यह सोचकर कि कुछ हुआ ही नहीं, कोई विपदा आयी ही नहीं, खूब मजे में रहिए। भगवान की दया से यहाँ किसी बात की कमी नहीं। इस*

समय मुझे नौकरी भी अच्छी मिल गयी है। अनाज-पानी भी काफी है—तंगी किसी बात की नहीं है। बिल्कुल एकाकी लग रहा था—आप आ गये— बड़ी हिम्मत आ गयी मुझे—घर से बाहर जाऊँ तो नौकर के भरोसे घर छोड़कर जाने की जरूरत नहीं रही अब—

[तारासिंह आता है। उम्र पच्चीस के लगभग। पोशाक अंग्रेजी ढंग की, किन्तु सिर पर सिक्खों की पगड़ी। दिखने में पैनी बुद्धिवाला, दृढ़ मुद्रावाला युवक। भीतर प्रवेश करते ही क्षण-भर के लिए ठिठक जाता है। सदानन्द की उस पर नजर पड़ते ही आगे बढ़ता है।]

सदानंद : *आओ, तारासिंह। ये काका आये हैं हमारे—और मौसी भी आयी हैं।*

तारासिंह : *ये? ये तुम्हारे काका हैं। पहले मुझ से क्यों नहीं कहा? बड़ी तकलीफ हुई इन्हें वहाँ—*

शान्ताराम : *हाँ, इन्हीं ने छुड़ाया था हमें अजी, यह तो चलता ही रहेगा। लड़ाई का वक्त है। हर व्यक्ति एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखता है। और ऊपर से मैं रहा ऐसा पगला-सा। जवाब तक देते नहीं बनता था। बड़े उपकार किये आपने—उस वक्त एकदम सीधा ही चल दिया। आपको धन्यवाद भी न दिया! बाद में दिल काटता रहा—सोचा—आप क्या कहते होंगे? यहाँ आप से भेंट हो गयी,—यह बड़ा अच्छा हुआ। अब फिर आप को धन्यवाद देता हूँ। माफ कीजिए, हाँ—*

तारासिंह : *नहीं-नहीं! कोई जरूरत नहीं। धन्यवाद कैसे और माफी क्यों? मेरा तो काम ही है वह। मुझे समय-समय पर दुभाषिया का काम करना ही पड़ता है। यदि पहले मालूम हो जाता, तो इतनी भी तकलीफ न होती आपको।*

सदानंद : *बैठो तारा ।* (शान्ताराम से) *हमारा और इनका बड़ा घरोबा है, शान्तू काका । हम दोनों एक ही परिवार के दो व्यक्तियों के समान हैं । देखा नहीं आपने कितनी सुन्दर मराठी बोलता है यह ?*

शान्ताराम : *बेशक । उधर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया था । सिक्ख शायद मराठी नहीं बोलते, क्यों ? वैसे देखा जाय तो सिक्ख और मराठों के बीच बड़े सम्मान का नाता है । हमारे संत नामदेव सिक्खों के गुरु-परिवार के हैं । है न ?*

तारासिंह : *जी हाँ, ठीक कह रहे हैं आप । वैसे मैं कोई बड़ा धार्मिक नहीं हूँ । लेकिन मुझे कुछ धुँधली-सी याद है कि मेरे पिताजी बार-बार नामदेव का नाम लिया करते थे । जब से यह मुल्कगिरी शुरू हो गयी है; तब से हम लोगों ने धर्म और ग्रन्थ सब लपेटकर अलग रख दिये हैं । अब तो एक ही बात जानते हैं कि हम लड़ाके हैं, बहादुर हैं । हम कोई भी धंधा करें, फिर भी स्वभावसे हम लड़ाके और बहादुर ही रहेंगे ।*

शान्ताराम : *हम भी थे लड़ाके और बहादुर । हमारे पूर्वजों ने बड़ी तलवारें खींची थीं । लेकिन अब उस्तरे का फाल भी देखते हैं तो भय से कलेजा काँप उठता है— इसीलिए तो आजकल सेफ्टीरेजर काम में लाते हैं ।* (विचित्र रीति से हँसकर) *तुम अपने आपको बहादुर समझते हो, इसीलिए आज तक अकड़कर चलते हो-रात-दिन अपने पास किरपान रखे रहते हो । लड़ते भी हो इधर-उधर जाकर—हम लोग तो अपने पूर्वजों की सिर्फ डींगें हाँका करते हैं—* (फिर हँसकर)—*ऐसा मजा है !*

सदानंद : (तारासिंह को आँख से इशारा करता है ।)—*आज शायद रंगून से बहुत लोग आये हैं ?*

तारासिंह : *नहीं तो। वैसे कोई खास नहीं। नया आवागमन खुल जाने से यहीं के लोग जा रहे हैं ब्रह्मदेश। फौजें जा रही हैं न? मैं भी तो अब जल्द ही जा रहा हूँ।*

शान्ताराम : *किस लिए?*

तारासिंह : *लड़ने।*

शान्ताराम : *किसके साथ?*

तारासिंह : *दुश्मन के साथ।*

शान्ताराम : *किसके दुश्मन के साथ?*

तारासिंह : *हाँ सच! किस के दुश्मन के साथ?*

शान्ताराम : *सदा, देख लो अब। किससे लड़ने जा रहे हैं, इस का भी इन्हें पता नहीं। इनसे कहा, लड़ने चलो, और बस, ये दौड़ गये—ऐसे हैं ये सरदारजी। हम मराठे वैसे नहीं। हम बड़े विचार शील हैं। हम बहुत सोचते हैं—इतना सोचते हैं कि आखिर अपना राज्य भी खो देते हैं। पेशवाओं का इतिहास पढ़ा है?*

सदानंद : *नहीं।*

शान्ताराम : *तो फिर पढ़ लो एक बार! पर पढ़ोगे क्या खाक? कहाँ किसने लिखा है वह इतिहास? किसी एक साहब ने कहीं कुछ भी लिख रखा है, उसी को दोहरा रहे हैं हम। उस समय क्या हुआ था, इसे कौन जानता है? राघोबा दादा ने बेवकूफी की, फिरंगियों को घर में घुसा लिया। इसके आगे का इतिहास कोई ठीक से जानता भी है? वह लिख रहे हैं, हम पढ़ रहे हैं—सिर्फ एक तमाशा हो रहा है! आज ही देख लेना! प्रत्यक्ष क्या हो रहा है, इसका पता दुनियाँ को कहाँ चल पाता है। जो पत्रों में छपता है, उसे ही दुनिया सच समझती है। लेकिन सच और झूठ में सिर्फ*

चार अँगुल का नहीं, बल्कि खासा जमीन-आसमान का फर्क है। आग लगा देना चाहिए इन इतिहासों को। इन सब पुराने इतिहासों को चिराग अली के सुपुर्द किये बिना नया इतिहास निर्मित नहीं होगा।

तारासिंह : *कम-से-कम इस मामले में तो हम लोग बड़े सुखी हैं। उस पुराने इतिहास की खबर तक नहीं है हमें। इतिहास के सब ग्रन्थों को ताक पर रख दिया है हमने। बस, आगे कदम बढ़ाये जा—यही हमारी टेक है—*

शान्ताराम : *आगे? आगे याने कहाँ?*

तारासिंह : *आगे के मोरचे पर—*

शान्ताराम : *आगे का मोरचा कौन-सा और पीछे का कौन-सा, इसका भी कुछ पता है तुम्हें? आगे कदम बढ़ाने की बातें करते हो और सारी दुनिया पीछे खिसक रही है। हमारा ब्रह्मदेव चला गया। पर क्या इसकी कुछ भी खबर पहुँची है हिन्दुस्तान में? उन्हें इतना ही मालूम हुआ कि ब्रह्मदेश चला गया। परन्तु ब्रह्मदेश अपना था, इसे कौन महसूस करता है वहाँ? हिन्दुस्तान से अलग जो कर दिया गया था न? हमें मणीपुर तो अपना लगता है, परन्तु ब्रह्मदेश अपना नहीं लगता। आखिर भारतीयों को यह जाकर समझाये कौन कि ब्रह्मदेश और मणीपुर में कोई फर्क नहीं है।*

[अमला आती है। एक क्षण के लिए तीनों उसकी ओर देखते हैं। हर व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। उसकी नजर भी तीनों पर से घूम जाती है। तारासिंह का चेहरा गिरता है।]

अमला : *अब भीतर चलिये, शान्तू काका। बहुत समय है लड़ाई की बातें करने के लिए।* (देखकर) *अभी तक यह सामान यहीं पड़ा*

है। कहाँ चल दिये ये सब नौकर? चलो, देख क्या रहे हो? उठाओ एक-एक चीज और ले चलो भीतर। चलिये काका।

[अमला और शान्ताराम भीतर जाते हैं। सदानन्द और तारासिंह एक दूसरे की ओर देखकर हँसते है और सामान उठाकर भीतर जाते हैं। एक क्षण-भर वहाँ कोई नहीं होता। उसके बाद अमला और तारासिंह भीतर से बाहर आते हैं।]

अमला : *उसके बारे में एक शब्द भी न बोलना, समझे? कुछ भी न कहना। उन्हें भी कुछ न बोलने देना। मैं आड़ में खड़ी देख रही थी कि किसी के मुँह से एक शब्द निकलता है, तो वे दस शब्द बोलते हैं। उनका दिमाग भड़क उठा है। मौसी को यदि आप देखें, तो घबड़ा जायेंगे। बिल्कुल सुन्न हो गयी है वह। हमें कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे उन दोनों को आराम मिले। रूपा कहाँ है? उसे भेज दो यहाँ कुछ दिन के लिए। मौसी को एक साथी मिल जायेगा। मुझे देखती है, तो उन्हें अपनी बेटी की याद हो आती है और फिर वे एकदम बेचैन होने लगती है—जाने कैसे आयेंगी वे राह पर?*

तारासिंह : *क्या हो गया है उन्हें ?*

अमला : *क्या तुम नहीं जानते कि वे रंगून में थीं?*

तारासिंह : *हाँ, थी—तो फिर?*

अमला : *तुम तो लड़ाई की कोरी गप्पें हाँकते हो। अभी तक लड़ाई देखी नहीं है तुमने। कितने अनर्थ हुए हैं वहाँ, मालूम है तुम्हें?*

तारासिंह : *सच है! पर अब उससे क्या वास्ता? अब रंगून हमारा हो गया है। जैसा यह शौनान, वैसा ही रंगून। दोनों तरफ शान्ति छायी हुई है।*

अमला : अब छायी है । परन्तु उस समय क्या हुआ था, इसका कहाँ पता है तुम्हें ? मौसी की लड़की हवाई हमले का शिकार हो गयी । चुटकी-भर राख भी न मिली उसकी ! ऐसे कितने ही बच्चे-कितने ही हट्टे-कट्टे लोग, कितने ही बूढ़े खत्म हो गये होंगे !—

तारासिंह : आखिर यह लड़ाई है । लड़ाई में ऐसा होगा ही । कोई रणभूमि पर मरते हैं, तो कोई घर में ही मर जाते हैं । मरने और मारने के लिए ही तो यह लड़ाई शुरू हुई है न ? इसके लिए अफसोस करने की क्या जरूरत ? कभी न कभी मरना ही है । किसी बीमारी से मरने की अपेक्षा रणभूमि जैसे पवित्र-तीर्थ में प्राण निकल जायें, तो क्या बुरा है ?

अमला : वाह ! रणभूमि को पवित्र-स्थान कहते हो ? पहले जब रणभूमि पर खून की नदियाँ बहती थीं, तब उसे तलवार का घाट कहा करते थे । आजकल दावानल भड़क उठता है और उसमें सारी दुनियाँ खाक हो जाती है । अब समरांगण तीर्थ नहीं रहा, होमकुंड हो गया है ! चाहो तो होम की आहुति कह सकते हो !

तारासिंह : तीर्थ और होम की बातें क्यों करती हो, अमला ? छोड़ो इन बातों को । क्या मैं यह सुनने आता हूँ यहाँ ?

अमला : तो फिर किसलिए आते हो ?

तारासिंह : क्या तुम्हीं यह पूछ रही हो ?

अमला : हाँ-हाँ, मैं ही पूछती हूँ । साफ-साफ जवाब दो न ?

तारासिंह : आज तुम्हें क्या हो गया है, अमला ? इतना फर्क कैसे हो गया ? कहाँ गयी वह हँसी तुम्हारी ?

अमला : गयी होमकुण्ड में—ब्रह्मदेश के होमकुण्ड में ! अब उलट-पलट हो गया है मेरा मन । आज तक जब भी तुम आते, मैं हँसती

थी। परन्तु अब जब आओगे, तो मुझे गम्भीर हो जाना पड़ेगा। अब मुझे हँसना पड़ेगा मौसी के सामने—उसे हँसाना होगा—वह बेचारी हँसना जैसे भूल ही गयी है। इसीलिए मैंने कहा कि रूपा को यहाँ भेज दो। हम दोनों हसेंगे-खेलेंगे और मौसी को भी हँसा-येंगे। आज से हमारी और तुम्हारी हँसी बन्द! दादा का स्वभाव तुम जानते ही हो। किसी कोने में पुस्तक लेकर बैठ जायेंगे—

तारासिंह : और रूपा आयी तो वह भी उसके पीछे खड़ी होकर पढ़ने लगेगी। वह भी तो आखिर किताब की कीड़ा ही है न? बड़ा क्रोध आता है मुझे उन दोनों पर—हमेशा पढ़ाई-पढ़ाई! न जाने पढ़ने से क्या मिल जाता है उन्हें? मुझे तो किताब के इन कीड़ों पर बड़ी चिढ़ आती है।

अमला : तुम्हें क्या पसंद है?

तारासिंह : क्या तुम्हें नहीं मालूम?

अमला : औरतों से घुल-घुलकर प्यार की बातें करना?

तारासिंह : औरतों से नहीं—जवान औरत से—तुमसे।

अमला : क्या करोगे मुझ से बातें करके?

तारासिंह : बहादुर बनूँगा—

अमला : क्या जवान औरतों से बातें करके लोग बहादुर हो जाते हैं?

तारासिंह : जरा पुराना इतिहास तो पढ़ो।

अमला : पुराना इतिहास जला डालो—अभी-अभी काका जी ने कहा—भूल गये क्या?

तारासिंह : मैंने उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। वे कुछ कह रहे

थे और उन्हें लग रहा था कि मैं सुन रहा हूँ। परन्तु मैं देख रहा था कि तुम कब आती हो। तुम्हारे बिना मेरे लिए यहाँ अँधेरा था। तुम आयीं—देखा तो तुम्हारी मुद्रा गंभीर!—और मेरा कलेजा धक-से हो गया! सोचा, आज इसे क्या हो गया है?

अमला : आज एक माँ जो मिल गयी है न मुझे? मौसी नहीं—माँ! अभी तक माँ से वंचित थी मैं। अब वह आ गयी है। पर माँ कहूँ या जी जी कहूँ, यह सवाल मेरे सामने खड़ा हो गया है। है तो माँ की तरह, पर दिखती हैं बड़ी बहिन की तरह—इसीलिए बड़े असमंजस में पड़ गयी हूँ। ऊपर से, उसके मन की हालत बड़ी अजीब-सी हो गयी है। कैसे राह पर आती है, यही चिन्ता लगी है मुझे!

तारासिंह : तो कुल मिलाकर बात यह है कि अब हिस्से-बाँटे शुरू हो गये हैं। प्रेम करने के लिए या स्नेह करने के लिए कहो, तुम्हें एक और व्यक्ति मिल गया है। अब यह भाग्य मुझ अकेले का नहीं रहा!

अमला : क्यों, क्या ईर्षा होती है तुम्हें? और यदि वह मेरी माँ ही होतीं तो?—

तारासिंह : तुम्हारी माँ होतीं, तो वह यहीं रहतीं। अचानक कहीं से भी टपककर हम दोनों की जोड़ी न बिगाड़तीं।

अमला : क्या बिगड़ा हैं अपना?

तारासिंह : अब बिगड़ने को और क्या बचा है। एक क्षण में तुम्हारा स्वभाव बदल गया। हँसी गायब हो गयी। अभी यह हाल है तो आगे क्या होगा।

अमला : नहीं तारा! अब हमें अपने स्वभाव थोड़े बदल देने

चाहिए। मैं अकेली क्या करूँगी? तुम्हारी मदद की मुझे जरूरत होगी। मुझ पर यह भारी जिम्मेवारी आ पड़ी है। जैसा हम चाहते हैं वैसा यदि हो जाय, तो यही समझ लो कि आगे चलकर हम अपनी वह जिम्मेवारी किस तरह निभायेंगे, इसकी तालीम ही पा रहे हैं हम।

तारासिंह : *जहाँ तुम, वहाँ मैं। तुमसे मैं अलग नहीं हूँ, अमला। तुम्हारा सुख मेरा सुख है—तुम्हारा दुख मेरा दुख है। यूँ ही मेरे मन मे एक गलत विचार आ गया था। सुख की अपेक्षा दुःख के कारण ही दो जीव एक दूसरे के अधिक निकट आते हैं, यह मैं जानता हूँ। कौन कह सकता है कि इस सङ्कट के कारण ही हमारी जोड़ी जम जाय!*

अमला : *सङ्कट? यह सङ्कट नहीं है, तारा। यह कर्तव्य है हमारा। विकट भले ही हो, फिर भी कर्तव्य से निर्मित हुई सेवा है यह, यह ठीक से समझ लो। यूँ ही गलत न समझो—यह सङ्कट नहीं, यह सेवा है।* (भीतर से सदानन्द "अमू! अमू!" कहकर पुकारता है)

अमला : *आती हूँ*—(तारासिंह से) *जरा ठहरना-अभी आयी।* (जाती है।)

[तारासिंह क्षण-भर के लिए इधर-उधर टहलता है। एक बार भीतर झाँककर देखता है। संभवतः उसके मन में यह विचार आता है कि मैं भी भीतर जाऊँ। परन्तु फिर पीछे कदम हटा लेता है। इसी समय डिक्रूज आता है। यह युवक तारासिंह की ही उम्र का है। वह गोवा का ईसाई है। चेहरा प्रसन्न, पोशाक बिल्कुल व्यवस्थित ढंग से पहने हुए और अनुशासन से बर्ताव करनेवाला। अंग्रेजों के बहुत से रीति-रिवाज का अनुकरण करनेवाला।]

डिक्रूज : *हलो तारासिंह—*(तारासिंह चौंककर पीछे देखता है ।) *सदानंद कहाँ गया ?*

तारासिंह : *अच्छा, तुम हो ? आज बड़ी याद आयी सदानंद की ? एक महीना हुआ—तुम्हारा कोई पता ही नहीं था ।*

डिक्रूज : *सरकारी काम से जकर्ता गया था । आज ही तो लौटा हूँ । क्या कहूँ तारा, जावा द्वीप की तो समूची हुलिया ही अब बदल गयी है । सारे बेकारों को काम मिल गया है वहाँ । बड़ी धूमधाम मची है । जकर्ता स्टेशन सुनते हो न रोज ?—सदानंद कहाँ है ?*

तारासिंह : *आज उसके घर मेहमान आये हैं । बैठो न । उसकी मौसी और उसकी मौसी के पति दोनों आये हैं रंगून से ।*

डिक्रूज : *अच्छा ? इस समय रंगून में भी इसी तरह की हलचल मची होगी—है न ? क्या कह रहे थे वे ? तुम्हारी मुलाकात हुई उनसे ?*

तारासिंह : *मुलाकात हुई । परन्तु जो तुम चाहते हो वैसी कोई बात उन्होंने मुझसे नहीं कही । वे तो बेचारे दुःख का बोझ लेकर आये हैं रंगून से । बड़ा पस्त हुआ दिख रहा है वह शख्स । बेचारे की लड़की मर गयी हवाई हमले में—*

डिक्रूज : *अच्छा ? तो फिर यह सुख की भेंट नहीं । क्या वे अब यहीं रहेंगे ?*

[कपड़े बदल कर सदानन्द के साथ शान्ताराम प्रवेश करता है ।]

सदानंद : *हलो डिक्रूज,—यह हमारा दोस्त मनवेल डिक्रूज । इसे हम मनु कहते हैं । महीने भर से कहीं गायब हो गया था—ये हैं हमारे काका जी, शान्ताराम दीवान—आप कोल्हापुर के रहनेवाले हैं । कई बरसों से रंगून में थे । बैठ जाओ न तुम लोग ।*

शान्ताराम : *अपना देश छोड़ा कि बाहर सभी अपने लगने लगते हैं। बम्बई में था, तो सिक्ख पराये जान पड़ते थे। गोवा के ईसाईयों की हम खिल्ली उड़ाते थे। आज यहाँ—इस सिंगापुर में ऐसा लगता है जैसे हम सब एक ही परिवार के व्यक्ति हैं।*

सदानंद : *एक ही परिवार है यह। पहले हम लोग अलग-अलग जगह बिखर गये थे, पर अब पास-पास आ गये हैं। अब भेद-भाव का कोई विचार ही नहीं उठता हमारे मन में।—*

शान्ताराम : *डिक्रूज हैं आप? कहाँ थे, यहाँ आने से पहले?*

डिक्रूज : *कोल्हापुर में था, साहब।*

शान्ताराम : *कोल्हापुर में, मेरे कोल्हापुर में?* (एकदम उठकर उसे खींचता हुआ कोच पर अपने निकट बैठाता है) *कोल्हापुर मे तू था—क्या चमत्कार है? आदर-सूचक सर्वनाम का अब मुँह से निकलना ही बन्द हो गया। क्या करता था कोल्हापुर में? क्या सूझी तुझे यहाँ आने की!*

डिक्रूज : *वहाँ मै प्रभात कम्पनी में वायलीन बजाता था। वहाँ से यहाँ ग्रामोफोन कम्पनी में आ गया। केन साहब गिरफ्तार हो गये। उस समय मैं भी गिरफ्तार हो रहा था। पर एक जान-पहचान के मिल गये। उन्होंने मुझे बचा लिया। अब मुझे यहाँ एक नौकरी मिल गयी है।*

शान्ताराम : *कौन-सी?*

डिक्रूज : *यह तो इस समय नहीं बता सकता। तनख्वाह तो म्यूजीशियन की हैसियत से ही मिल रही है।*

शान्ताराम : (गंभीर होकर उसकी पीठ पर रखा अपना हाथ धीरे से दूर कर लेता है) *नौकरी कुछ है, और तनख्वाह किसी दूसरी*

हैसियत से पा रहे हो? यही हो रहा है इस लड़ाई के जमाने में। जिन्दा रहना है न हमें? जिन्दा रहने की आशा बड़ी बुरी होती है। हेमलेट ने कहा, वह झूठ नहीं—रहना या न रहना; यही बड़ा सवाल है। जन्म लिया है, इसीलिए तो जीने की यह झंझट पीछे लग गयी है। इससे तो यदि बिल्कुल रहते ही नहीं, तो क्या हमें यह सत्यानाश देखना पड़ता? इंसान, इंसान को मार रहा है। यदि मारनेवाले से पूछें कि क्यों मार रहे हो? तो वह क्या जवाब देगा? है कोई जवाब? (चिल्लाकर) कोई बोलो न? दो न जवाब? (तीनों घबड़ाये हुए-से देखने लगते हैं) क्या जवाब दोगे तुम? कोई जवाब ही नहीं है इस सवाल का। व्यर्थ है यह प्रश्न! बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसा प्रश्न कभी किसी से न पूछे। हुक्म मिला, कि एकदम मारना शुरू कर देना चाहिए।

डिक्रूज : आप ठीक लड़ाई के वक्त ही थे शायद रंगून में?

शान्ताराम : नहीं तो अभी कैसे आता यहाँ? कहीं दूर से बम की आवाज आयी और सब लोग भागने लगे। मैं ठहरा कोल्हापुरिया मर्द! सिर्फ आवाज सुनकर ही घबड़ानेवाला न था मैं। डटा रहा वहीं—आवाजें नजदीक आयीं, बिल्कुल कानों तक जा पहुँचीं—फिर भी मैं न डगमगाया और आखिर नतीजा यह हुआ कि भरा-पूरा घर खाक में मिल गया—

डिक्रूज : क्या जापानी बम से?

शान्ताराम : किसी-न-किसी का बम जरूर था—किसका था, इस पूछ-ताछ की मुझे क्या जरूरत थी? दोनों आसमान में लड़ रहे थे। आकाश का वह वज्र इस कोल्हापुरिया के सर पर आ गिरा—(कठोर मुद्रा से) चुटकी-भर राख भी न मिली उस लड़की की—अगर मिलती भी, तो कौन हम उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेवाले थे? बेचारी

वह कोल्हापुर की बुढ़िया भी उसी के साथ खत्म हो गयी। जाने क्या सूझी जो हम घर से बाहर चल दिये थे। हम सभी घर में रहते, तो रोने को भी कोई न बचता।

डिक्रूज : (हँसने का प्रयत्न करता हुआ) *अब आप यहीं रहिए, काका! हम सब हैं ही यहाँ। यहाँ कोई डर नहीं। पहले से यहाँ अच्छी मजबूती कर ली गयी है। अभेद्य है यह शोनान—*

शान्ताराम : (चिढ़कर) *शोनान मत कहो-सिगापुर कहो। सिंगापुर कहने से कुछ-कुछ कोल्हापुर कहने-सा लगता है।*

सदानंद : *परन्तु वह नहीं हो सकता। शोनान ही कहना होगा अब। बहुत हुआ तो इस चहारदीवारी के भीतर चाहो तो सिंगापुर कह सकते हो?*

शान्ताराम : *तो फिर हम इस चहारदीवारी के भीतर ही बैठे रहेंगे। सिगापुर! कोल्हापुर! नागपुर! राजापुर! लगता है जैसे हिन्दुस्थान में ही है। कब दर्शन होंगे उस कोल्हापुर के अब?*

(सावित्री और अमला आती है।)

शान्ताराम : *यह है मेरी पत्नी—और, आप हैं तारासिंह—और यह है अपने कोल्हापुर का मनबेल डिक्रूज—*

डिक्रूज : *वैसे मैं मूल निवासी गोवा का हूँ—पर कोल्हापुर में था—नमस्ते।*

तारासिंह : *नमस्ते।*

सावित्री : *क्या यही है तेरा तारा, क्यों अमू?* (अमला के मुख पर मन्द मुसकराहट की रेखा दौड़ जाती है।) *क्यों, शर्माती क्यों है?*

सदानंद : *अमू क्यों शर्माने चली? आप अभी उसके ढंग नहीं जानती मौसी!—*

अमला : *चुप रहिए दादा, इतना भी नहीं समझते ? कहाँ, कब, क्या और कितना बोलना चाहिए, कम-से-कम इतनी बुद्धि तो होनी चाहिए मनुष्य में !—सुना मनू, मौसी अब यहीं रहेंगी—*

शान्ताराम : *कौन कहता है ?*

अमला : *तो क्या वे मुझे यहाँ अकेली छोड़कर चली जाएँगी ?*

सावित्री : *और फिर इस तारा का क्या होगा ?*

तारासिंह : *तारा टूटकर गिर पड़ेगा कहीं ।*

सदानंद : *तारा नहीं टूट सकता । ध्रुव तारा है वह—बिल्कुल अटल । बैठिए न मौसी । यहाँ कोई पराया नहीं ।*

तारासिंह : *मुझे अब जाना चाहिए—माफ़ कीजिए !* (अमला को धीरे से इशारा करता है ।)

अमला : (जोर से) *क्या है ? इशारे क्यों करते हो ? साफ़-साफ़ कहो न, क्या बात है ?*

तारासिंह : (झेंपकर) *नहीं, वैसे कोई गुप्त बात नहीं है । मैं यही बताना चाहता था कि अब कल ही हाजिर होऊँगा । आज फिर दुबारा न आ सकूँगा ।*

अमला : *तो आज दुबारा तुम्हें बुलाया किसने था ? जाओ न जल्दी उधर—वह नाकानिशी तुम्हारी राह जो देख रहा होगा न ?*

शान्ताराम : *कौन है यह नाकानिशी ?*

तारासिंह : *वही जो आपकी बोली नहीं समझता था । अच्छा, तो अब चलता हूँ । नमस्ते ।* (जाता है ।)

अमला : *इतने दिन कहाँ गायब थे मनू ?*

डिक्रूज : *जकर्ता गया था । पर हाँ, यह किसी से कहना नहीं !*

अमला : *कितने लोगों को दी है ऐसी हिदायत तुमने ? तारा से*

भी कहा है न ? तो बस, अब अलग से ढोल पीटने की जरूरत नहीं !

डिक्रूज : *छि ! छि ! वह जानता है । पर किसी से कहेगा नहीं ।*

शान्ताराम : *कहाँ है यह जकर्ता ?*

डिक्रूज : *वह जावा की राजधानी है आजकल । एक महीने था वहाँ । बड़ा व्यस्त रहा अपने काम में । अब जावा भी स्वतंत्र हो रहा है न ?*

शान्ताराम : (दाँत-ओठ चबाकर) *ब्रह्मदेश भी स्वतंत्र हो गया है । पर यह स्वतंत्रता कैसी ? सारे ब्रह्मी लोग ऐसे बैठे हुए है जैसे देवता हो—ब्रह्म-स्वरूप हो गये हैं । हाँ, है जरूर—पर मिलते नहीं । कोई अस्तित्व ही नही रहा है उनका—मानो देवघर में देव बैठा दिये गये है और ताला लगा दिया है । ऐसी देवघर की स्वतंत्रता है यह ! इस स्वतंत्रता से तो हमारे भारत की पराधीनता अच्छी !*

डिक्रूज : *कृपाकर ऐसी कोई बात न कहिए यहाँ ! मन में ऐसा लगता जरूर है । परन्तु इस बात को मुँह से निकालना बड़ा भयंकर है यहाँ । इन दिनों हमें अपनी जीभ कब्जे मे रखनी चाहिए । नहीं तो अपनी ही जीभ अपना गला काट देगी ।*

अमला : *क्या रूपा नहीं आयी अभी तक ?*

सावित्री : *कौन रूपा ?*

सदानन्द : *तारासिंह की बहिन । बड़ी अच्छी लड़की है वह ।*

अमला : *सुन लिया मनू, रूपा बड़ी अच्छी लड़की है—और मैं बुरी लड़की हूँ ! मेरे मुँह में लगाम जो नहीं है न ? वह कैसी मीठी-मीठी बोलती है ! इन लड़ाकू सिक्खों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ ही जाने क्यों इतनी सुकुमार होती हैं ?*

ानन्द : सभी वैसी नहीं होतीं ?

मला : तो क्या तुम्हारा मतलब यह है कि रूपा ही एक अपवाद । क्यों ?

ान्ताराम : तारासिह की बहिन ? क्या वही लड़की जो अब यहीं ने के लिए आने वाली है ?

क्रूज : क्या रूपा अब यहीं रहेगी ? लगता है विवाह निश्चित गया शायद ?

ानन्द : छि ! छि ! यह बात नही । मौसी के साथ रहने के लिये रही है वह ।

मला : और तुम उसके साथ रहोगे ।

ानन्द : तो तुम्हारे साथ के लिये क्या तारासिह को बुला ?

मला : इस घर को क्या तुम रेलवै का वेटिंगरूम समझ रहे हो ? र यह डिक्रूज भी क्यों न रहे यहीं । यह बजायेगा अपना इकतारा र हम बैठेंगे एक दूसरे के कान से मुँह लगाए कानाफूसी करते । हम जब इस तरह अपने ही इकतारे बजाते बैठे रहेंगे, तो मौसी र काका क्या अकेले नही पड़ जाएँगे ? यह भी सोचा है तुमने । ई जरूरत नहीं रूपा को यहाँ आकर रहने की । और फिर तारा घर में भी तो कोई चाहिए न ?

ानन्द : अच्छा ? तो असल बात यह है कि तारा को असुविधा गी, इसलिये रूपा को यहाँ नहीं आना चाहिए—क्यों ?

मला : हाँ, हाँ ! तारा को असुविधा होगी इसीलिये मै चाहती कि तुम्हें भी असुविधा हो ।

सावित्री : *कितनी स्वार्थी है री अमू ? वह यहाँ आती है, तो आने दे न उसे।*

अमला : *नहीं। अपने प्रेम की मैं किसी को भी भागीदारिन नहीं बनाना चाहती। अगर वह आयेगी, तो यह निश्चित है, कि मुझे कोई नहीं पूछेगा। जिस तरह तारा कभी-कभी आता है, उसी तरह वह भी कभी-कभी आएगी* (रूपा आती है। अमला की हमउम्र है। देखने में जरा सुकुमार है। पंजाबी पोशाक पहने है।) *रूपा को यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं।*

रूपा : (दौड़कर अमला के गले में बाँहें डाल देती है।) *देख, मैं आ गयी न ! तू कितना भी कह कि न आ, पर मैं थोड़े ही सुनने वाली हूँ ?*

सावित्री : *क्या यही है रूपा ?*

रूपा : (उसे छोड़कर) *आप ही मौसी है शायद ?*

अमला : हाँ।

(सावित्री और रूपा दोनों एक दूसरे की ओर देखती रहती हैं। सावित्री एकदम गद्‌गद् होकर उसे झट से अपने निकट खींचकर भुजाओं में भर लेती है।)

सावित्री : *(शान्ताराम से) यह अपनी नलू जैसी ही दिखती है न ?* (शान्ताराम सुन्न भाव से गर्दन हिला कर 'हाँ' कहता है। *कभी-कभी इसी प्रकार की पोशाक पहनती थी वह।* (दोनों हाथों से उसका चेहरा पकड़कर उसे बड़े ध्यान से निहारती है।) *ठीक यही-बिल्कुल यही। मानो फिर से पैदा हो गयी हो। जैसे भगवान ने मेरी प्रार्थना सुनकर आकाश से टपका दी हो—*(रूपा मन्द हास्य करती है।) *ठीक इसी तरह हँसा करती थी वह !* (उसके ओंठ मिलाकर) *उसके भी ओंठ*

बिल्कुल ऐसे ही थे ! (फिर गद्‌गद्‌ होकर उसे अपने हृदय से कसकर चिपका लेती है। शान्ताराम की आँखों से आप-ही-आप आँसू टपक पड़ते हैं। किन्तु उसका चेहरा निर्विकार बना रहता है।)

शान्ताराम : *आकाश से बम गिरा करते हैं, लड़कियाँ नहीं। अच्छा है—उस जैसी दिखती है। आँः ! सभी लड़कियाँ मुझे उस जैसी दिखती हैं। यह अमला भी तो दिखती है उसी जैसी। परन्तु दिखना कोई होना नहीं होता। यह धोखा है—मरे हुए मन का भ्रम। कोई भी अपराध किसी के भी सिर मढ़ देना और अपने मन को सन्तोष दे देना ! कितना पागल होता है यह मन ? कितने मामूली कारण से प्रसन्न हो जाता है ? क्या मूल्य है इस प्रसन्नता का और अप्रसन्नता का । हूँः धोखा ! धोखा !! धोखे की टट्टी है यह सब।*

(शान्ताराम जब स्वागत की तरह बोल बोलता है, उस समय सब लोग तटस्थता से उसकी ओर देखते हुए सुनते रहते हैं । सावित्री रूपा को अपने हृदय से चिपकाये बैठी रहती है। उसकी ओर शान्ताराम की दृष्टि जाती है।)

शान्ताराम : *छोड़ो भी उसे। तुम्हारे प्रेम के मारे बेचारी का दम घुट जायगा।*

सावित्री : (अपने आलिंगन से रूपा को छोड़ देती है और उसके कन्धे पर हाथ रखती हुई) *ऐसा लगा जैसे हृदय का खाली स्थान फिर भर गया हो। अब तू यहीं रह रूपा—*

सदानन्द : (अमला से) *सुन ले।*

अमला : *सुन लिया।*

डिक्रूज : *अब लड़ाई पर जा रही है वह। उसने भी फौज में अपना नाम लिखा लिया है।*

सावित्री : (घबराकर) *नहीं-नहीं-नहीं। मैं उसे यहाँ से नहीं जाने दूँगी। क्या स्त्रियाँ भी लड़ाई पर जाती हैं कभी?*

रूपा : *हाँ, कितनी ही जाती हैं।*

शान्ताराम : *किस लड़ाई पर? किस तरफ? किस से लड़ोगी?*

सदानन्द : *ऐसी कोई बात न पूछिये उससे। वह अपना देश नहीं जानती—उसने अपने देश की मिट्टी नहीं देखी। अभी तक वह यही समझती है कि यही उसका देश है—*

शान्ताराम : *और तुम लोगों ने उसे अभी तक अज्ञान में ही रखा है। उसने हिन्दुस्तान का नक्शा भी देखा है क्या? सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्—ऐसी वह मेरी माँ—*

रूपा : *यह गीत तो हम लोग रोज गाते है।*

शान्ताराम : *परन्तु उसे गाते समय तुम्हारा हृदय क्या ऐसा भर आता है? क्या इस तरह आँसू बहते हैं तुम्हारी आँखों से? क्या शब्द इस तरह रुँध जाते है गले में? तुम तो उसे इस तरह गाती हो जैसे कोई भजन हो। और तानें भी लेती हो मूर्ख की तरह। एक कहता है, और दूसरे उसे दोहराते हैं। हजार लोगों को एक साथ एक स्वर में गाना चाहिये। गीत गाते समय हजारों की आवाज से आसमान गूँज उठना चाहिये।*

रूपा : *इसी तरह गाते हैं हम उसे। हजारो लोग एक साथ, एक स्वर मे गाते है वह गीत।*

शान्ताराम : *कहाँ?*

रूपा : *यहीं—इसी शोनान में।*

शान्ताराम : (चिल्लाकर) *शोनान मत कह—सिंगापुर कह—*

डिक्रूज : *जरा धीरे-धीरे बोलिये। अगर बाहर कोई सुन ले तो हम*

पर क्या आफत आएगी; इसकी आपको कोई कल्पना नहीं है। कम-से-कम इस विषय में तो आप अपनी जबान पर रोक लगाइये।

शान्ताराम : अब जबान ही काट डालता हूँ। इसके बिना उसे रोकना मुश्किल है। या फिर इस शहर को छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चल देना होगा।

सावित्री : नहीं-नहीं—रूपा को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।

अमला : (अपने आप से) लो, मुझे भी भूल गयीं मौसी।

शान्ताराम : मन को कैसे रोकूँ? इधर (सीने पर हाथ मारकर) आग भड़क रही है। दहक रही है भीतर-ही-भीतर। उसे कैसे बुझाऊँ? तुम्हारे घर आया हूँ—तुम्हें सम्हालना होगा—विवेक से काम लो—शान्ताराम, विवेक से काम लो।

रूपा : आज शाम को हमारी परेड है। आप देखने चलेंगी मौसी?

सावित्री : मौसी मत कह—मुझे माँ कह—माँ कहा कर—वह भी माँ ही कहती थी मुझे। तू भी अपनी माँ को—क्या कहती थी?

रूपा : माँ!

सावित्री : एक बार फिर से तो कह?

(सावित्री बार-बार रूपा से 'माँ' कहलवाती है।)

सावित्री : एक ही शब्द है—पर कितना मीठा लगता है तेरे मुँह से! माँ! वह इस तरह नहीं कह सकती थी। माँ! (शान्ताराम से) मीठा लगता है न यह? (वह रुखाई से गर्दन के इशारे से 'हाँ' कहता है) (रूपा से) और इन्हें क्या कहेगी?

अमला : *काका !*

सावित्री : *नहीं, बाबा !*

रूपा : *हमारी भाषा में यह शब्द नहीं है।*

सावित्री : *पर हमारी भाषा में तो है। हमारी भाषा ही बोल रही है न तू ? फिर क्या हमारी ही भाषा में नहीं पुकारेगी इन्हें ? कह—*

रूपा : *बाबा !*

शान्ताराम : (चौंककर) *क्या कहा ?*

रूपा . *बाबा।*

शान्ताराम : *हाँ ! यह मुझे बाबा कहती है—यह लड़की, जो लड़ाई पर जा रही है—और मुझे बाबा कहती है, जो लड़ाई देख कर भाग आया है। सुना बेटी ! मेरे मन में भी बहुत था कि लड़ूँ। परन्तु लड़ाई पर जाने के लिये मुझे किसी ने बुलाया ही नहीं। वह सच्ची लड़ाई थी। लड़ाई पर ही जाना था—तो तुझे उस लड़ाई में जाना था। अब यह किसकी लड़ाई है ? किसके लिए कौन लड़ रहा है ? मेरी बात सुन, रूपा ! इस लड़ाई पर मत जा और न किसी को जाने दे—*

सदानन्द : (एकदम शान्ताराम के पास जाकर) *कृपाकर ऐसी कोई बात न कहें यहाँ पर—मेरी इतनी प्रार्थना मान लीजिये। उसे लड़ने का शौक है। फौजी वर्दी में अभी आपने देखा नहीं है उसे ! उसका यह शौक पूरा हो जाने दीजिए। किसी के भी साथ क्यों न हो, पर वह लड़ने जायगी। उसे एक बार लड़ाई की आदत हो जाने दीजिए। हमारी यह स्त्रियों की फौज यदि आप देखेंगे, तो आपकी आँखों में बस जायगी वह—*

शान्ताराम : हूँ : ! मुझसे कहते हो ? हाँ भाई, सुन लेना चाहिए। दूसरा चारा ही नहीं। मेरी आँखों में ऐसी फौज नहीं बसा करती। इन आँखों में बसी है केवल एक चीज—मेरी मातृ-भूमि ! मेरी मातृ-भूमि आज सङ्कट में है। रंगून बर्बाद हो गया। उसी तरह मेरी मातृभूमि को भी बर्बाद करने के लिये जा रहे हो तुम ! है न ?

रूपा : नहीं ? हम उसे मुक्त करने जा रहे हैं ?

शान्ताराम : नहीं ! उसे दूसरे संकट में डालने जा रहे हो ? यह राघोबा दादा की वृत्ति ही सत्यानाश कर देगी मेरी मातृभूमि का !

रूपा : कहाँ का राघोबा दादा ?

शान्ताराम : क्या तू नहीं जानती ?—नहीं जानती, यही अच्छा है। जला देना चाहिये वह पुराना इतिहास—

डिक्रूज : थोड़ा घूमने चलिएगा बाहर ? इन लोगों को यहीं छोड़ दीजिये। स्त्रियों में हम पुरुषों का क्या काम ? अमू को देखिये, कैसी चुप्पी साधे बैठी हुई है ? इस तरह मौन मैंने उसे कभी नहीं देखा था। हमारे बाहर जाने से इन्हें जरा स्वतन्त्रता मालूम होगी ?

शान्ताराम : तो चलो। मेरा भी जी बिल्कुल ऊब उठा है। (भीतर जाता है।)

डिक्रूज : अमला, इधर आ। तुझ पर यह बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी है। मौसी पर ठीक से ध्यान रखना। वह अपने मन का संतुलन न खो दे। देखती रहना। चलो सदानन्द, कपड़े पहिनकर आ जाओ। (सदानन्द भीतर जाता है।)

सावित्री : (रूपा से) और तू भी जा रही है क्या परेड के लिए ?

रूपा : *जी नहीं। अभी तो मुझे देर है कोई बुलाने आयगा ही। रोज सब को बुलाने मैं जाती थी! आज मुझे देर हो गयी है तो अब कोई दूसरा आयेगा ही बुलाने।*

सावित्री : *तो क्या अभी भी परेड के लिये तुम सब को बुलाने जाना पड़ता है?*

रूपा : *नहीं, ऐसी बात नहीं। अब तो सब इकट्ठी हो जाती हैं और अच्छा लगता है। बुलाने कोई न भी गया तो भी सब आ जाती है। पर हाँ, पहले से ही हम लोगों की यह आदत पड़ गयी है न?*

सावित्री : *क्या अमू नही जाती तुम्हारी परेड में?*

रूपा : *नहीं!*

सावित्री : *क्यों?*

रूपा : *उसी से पूछिए।*

सावित्री : (अमला से) *क्यों री, तू नहीं जाती?*

अमला : *मैं जाऊँगी, पर अभी नहीं...यहाँ नहीं—*

सावित्री : *फिर कहाँ?*

अमला—जहाँ शान्तू काका कहते हैं वहाँ। यहाँ की लड़ाई में मेरा मन नहीं लगता—

(सदानन्द और शान्ताराम बाहर जाने के लिये तैयार हो कर आते हैं और डिक्रूज को इशारा करते हैं। यह देखकर सावित्री उठकर शान्ताराम के पास जाती है।)

सावित्री : *सुनिए, जीभ पर काबू रखिएगा, समझे? यूँ ही कुछ न बक दीजियेगा। रंगून की याद है न? एक ही शब्द ने कितना तूफान*

खड़ा कर दिया था। सान श्वै था वहाँ, इसीलिये वह बला टल गयी थी। यहाँ पर तो ये छुड़ानेवाले ही उलटे संकट में फँस जायेंगे। वैसा एक शब्द भी न बोलिएगा यहाँ। तुम्हें मेरी कसम है—

(शान्ताराम हँसता है। तीनों चल देते हैं। सावित्री अपने स्थान पर जाकर बैठ जाती है। क्षण-भर के लिये स्तब्धता रहती है—कोई कुछ नहीं बोलता।)

अमला : *शान्तूकाका में कितना फर्क हो गया है ? बचपन की कुछ धुँधली-सी याद है मुझे। उस समय भी वे इसी तरह बड़े बातूनी थे—लेकिन उस समय की बातें कितनी मीठी होती थीं—बातों से कितना उल्लास झरता था ? कितनी प्यारी हुआ करती थीं उनकी बातें ? लगता कि लगातार सुनते ही रहें। परन्तु अब।* (एक गहरी साँस लेती है।)

सावित्री : *यदि तू रंगून में होती तो ऐसा कभी न कहती। तुम लोग बड़े भाग्यवान हो कि वैसी कोई आफत यहाँ नहीं आयी। हमें अपना दुःख बहुत बड़ा प्रतीत होता है, यह सच है। परन्तु इससे भी कितने अधिक भयङ्कर अत्याचार हुए हैं वहाँ, कितनी बरबादी हुई है, इसकी तुम्हें कल्पना भी नहीं हो सकती। अपने और पराये-सभी के दुखों का प्रभाव पड़ा है तुम्हारे काका के मन पर।*

रूपा : *अब वे पुरानी बातें सब भूल जाइये। यहाँ वैसी कोई बात नहीं हुई और न आगे कभी होगी ही—*

सावित्री : *यह कौन कह सकता है ?*

रूपा : *मैं कह रही हूँ। पुरुष तो तैयार हो ही गये हैं, और अब हम औरतों ने भी हाथ में बन्दूकें ले ली हैं—*

सावित्री : *इसीलिए तो भय लगता है मुझे...*

अमला : *इसीलिये मुझे भी भय लगता है। इसीलिये तो मैं नहीं सुने गयी फौज में। बचपन मे शान्तू काका के मुख से जो चार शब्द मैंने थे, उनका प्रभाव अब तक बना हुआ है मेरे मन पर।*

रूपा : *क्या कहा था उन्होंने ?*

अमला : *वह यहाँ नहीं कहा जा सकता। वैसी कोई बात यदि यहाँ कह दीजिये, तो वह गुनाह होगा। मन मे बहुत आता है कि कह दूँ--हृदय के भीतर से शब्द सरसराते हुए कण्ठ तक आते हैं, परन्तु मुँह पर ताला लगाकर चुप बैठ जाना पडता है, जाने कब इस प्रतिबन्ध से छुटकारा मिलेगा ?*

सावित्री : *यह प्रतिबन्ध तो तभी हटेगा जब कि हमारी मातृभूमि स्वतन्त्र हो जायेगी।*

रूपा : *कब स्वतन्त्र होगी हमारी मातृभूमि ?*

सावित्री : *कौन दे इस प्रश्न का उत्तर ? कितने ही लोगों ने कितनी ही भविष्यवाणियाँ कीं परन्तु यह भविष्यवाणी किसी से भी करते न बनी, इसीलिये तो हम इस तरह रो रहे हैं, आज उधर हिन्दुस्तान में क्या हो रहा है, इसका किसी को क्या पता ? वहाँ के कोई समाचार ही नहीं मिलते यहाँ—सब कुछ होते हुए भी ऐसा लगता है जैसे कुछ भी नहीं है।*

रूपा : *छोड़िये वे पुरानी बातें। उन्हें सुनती हूँ तो मन उदास हो जाता है, थक जाता है, हिम्मत टूट जाती है। क्या यह वक्त हिम्मत हारने का है ? इस समय हिम्मत हार जाने से कैसे काम चलेगा, माँ ? संकटों का क्या, बसन्त के बादलों की तरह आयेंगे और चले जायेंगे। ऐसे संकटों से यदि हम हिम्मत हारने लगें, तो फिर जिंदा किस आधार पर रहेंगे ? यही समय है हँसने, खेलने, कूदने और नाचने का।*

सावित्री : *वाह ! तू तो बूढ़ी नानी जैसी बातें कर रही है ? सच कहती है तू। परन्तु हँसे किसके लिये ? हँसने लायक कुछ होना भी तो चाहिये न ?*

अमला : *यही-यही जो इस समय हो गया है। हम सब आकर एक जगह मिल गये हैं, यह क्या कम है ? हमने कभी सोचा भी था कि ऐसा हो जायगा ? अब आप यहीं रहें मौसी। यहाँ से कहीं भी न जाइये।*

सावित्री : *यह विदेश है बेटी—विदेश में कब तक रहेंगे ? क्यों रहें किसी पराये देश में ? क्या धरा है हमारा यहाँ ? यहाँ कौन हमारे हैं जिनमें हम उलझे रहें ?*

रूपा : *फिर वही बात ? आप जब ऐसा कुछ कह देती हैं, तो मैं बेचैन हो जाती हूँ। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता...*

सावित्री : *समझ जायगी—मातृभूमि की धूल जब तेरे चरणोंका तेरे शरीर का स्पर्श करेगी, तब सब समझ में आ जायगा। तब तक तू नहीं समझेगी।*

[शान्ताराम हाँपता हुआ आकर एकदम बैठ जाता है।]

शान्ताराम : *नहीं-नहीं-नहीं...यह बर्दाश्त नहीं होता। जहाँ-तहाँ विदेशी। जहाँ-तहाँ चपटी नाकें। जैसे बाढ़ आ गयी हो इन नकटों की। उन्हें देखता हूँ, तो सारे बदन में जैसे आग लग जाती है। और हमारे ये बहादुर लोग—तीन-तीन बार झुककर उन्हें सलाम करते हैं। अपनी इन हिन्दुस्तानी आँखों से यह सब मैं कैसे देखूँ ?*

सावित्री : *तो फिर आप बाहर जाइये ही नहीं...सदानन्द कहाँ गया ?*

शान्ताराम : *गया होगा कहीं भी। मैं वह सब देख नहीं सका।*

मेरा खून खौल उठा। इस डर से कि कहीं जीभ की लगाम ढीली न हो जाय, मैंने दाँतों से ओंठ दबाये और फौरन भागा वहाँ से। घर जल्दी मिल गया यही भाग्य समझो।

(तारासिंह दौड़ता हुआ आता है।)

तारासिंह : (द्वार पर पहुँचते ही) काका आये क्या यहाँ ? (देखकर) आ गये आप ? अच्छा हुआ। उधर सदानन्द आपकी लगातार खोज कर रहा है। डिक्रूज के भी छक्के छूट गए हैं। और उसे जाना है काम पर। कैसा पागल-सा हो गया है वह ! अब फोन से उसे खबर दिये देता हूँ।...(भीतर जाता है।)

(एक क्षण के लिए स्तब्धता)

शान्ताराम : (बिल्कुल धीरे-धीरे) क्या करूँ ? कैसे यह बरदाश्त करूँ; क्या फिर चला जाऊँ रंगून ? बिना लिखे मुझसे कैसे रहा जायेगा। अखबार था हाथ में, सो वह भी निकल गया। अब लिखूँ किसके लिये ? अब लिखूँ भी तो क्या लिखूँ ? क्या बैरियों की तारीफ करूँ ? फिर से कलम हाथ में क्यों पकड़ूँ ? (तड़ाक से उठकर और अमला के दोनों हाथ पकड़कर) बता न ? फिर कलम क्यों पकड़ूँ ? अँगुलियाँ कैसी मचल रही हैं लिखने के लिए, आँधी उठी है मस्तिष्क में, शब्द जैसे लगातार उछल रहे हैं बाहर निकलने के लिये। परन्तु उन्हें कागज पर नहीं उतार सकता। ऐसा लगता है कि इस छटपटाहट में मेरे प्राण ही निकल जायेंगे। (धीरे से) यहाँ रेनियों मशीन मिल जायगी। (अमला गर्दन के इशारे से 'ना' कहती है।)

रूपा : (झट से आगे बढ़कर उसके कान से मुँह लगाती हुई)... मिल जाएगी। चाहिये आपको ? (शान्ताराम गर्दन के हल्के इशारे से 'हाँ' कहता है।) कब चाहिए ?

शान्ताराम : है तो ? बस ! कम-से-कम इतना ही सन्तोष हो जायगा—

मन को विश्राम मिल जायगा। आदमी मिल जायेंगे? मैं जो लिखूँगा उसे चुपचाप बाँटने के लिये?···मशीन कौन चलायगा?

रूपा : *मैं चलाऊँगी···पहले भी यह काम कर चुकी हूँ मैं···*(उसकी आँखों की ओर लगातार देखकर) *आप लिखिये तो, तारा से न कहियेगा किसी से भी न कहिएगा···हिन्दी में लिखिये। बाकी मैं सब देख लूँगी!* (बिल्कुल शान्ति से अपने स्थान पर जाकर बैठ जाती है। शान्ताराम सुन्न खड़ा रह जाता है जैसे पत्थर हो।)

तारासिंह : (बाहर से भीतर आकर) *खबर दे दी उन दोनों को। अब आप यहाँ से कहीं बाहर न जाइये, काका!* (बाहर आसमान में हवाई जहाजों की "घर्र-घर्र" आवाज सुनाई देती है। उसे सुनते ही सावित्री बेचैन हो जाती है। जब वह आवाज बढ़ने लगती है, तब सावित्री एकदम चीखती हुई बैठक खाने में इधर से उधर दौड़ती है। रूपा और अमला उसे पकड़ने का प्रयत्न करती है। "घर्र-घर्र" आवाज के और भी अधिक बढ़ जाने पर वह एकदम जोर से चीखकर बेहोश हो जाती है। रूपा और अमला उसे सम्हालती हैं। शान्ताराम का उस ओर कोई ध्यान नहीं है। तारासिंह उसके पास जाता है।)

शान्ताराम : *अब मनुष्यों में आ गया! अब प्राण नहीं जायेंगे*

(परदा गिरता है।)

दूसरा अङ्क

[स्थान—पहले अङ्क जैसा ही। कोने में रखी मेज के पास सदानन्द कुछ कागज लिये बैठा लिख रहा है। इसी समय शान्ताराम आता है और रेडियो के पास बैठकर रेडियो शुरू करने लगता है। सदानन्द एकदम चौंककर उसके पास आता है।]

सदानन्द : *क्या लगा रहे हैं काका ?*

शान्ताराम : (क्षण भर कोई उत्तर न देकर) *और क्या लगाऊँगा ? दिल्ली या बम्बई……*

सदानन्द : *छि ! छि ! नहीं ! वे स्टेशन न लगाइये। उन्हें लगाना यहाँ मना है।*

शान्ताराम : (उसकी बात की ओर कोई ध्यान न देकर रेडियो लगाता हुआ) *मैं जानता हूँ !*

सदानन्द : *जानते हैं न ? दीवाल के भी कान हैं यहाँ। कोई चुगली कर देगा तो व्यर्थ में एक आफत खड़ी हो जायगी।*

शान्ताराम : (रेडियो बन्द करके आगे बढ़ता हुआ) *हम तो अपनी मातृभूमि के लिये जैसे बिल्कुल पराये ही हो गये हैं ! उस से प्रत्यक्ष भेंट नहीं कर सकते, तो कम-से-कम आवाज ही सुन लेते वहाँ की… तो वह भी मना है !*

सदानन्द : *लड़ाई के समय ऐसा होगा ही।*

शान्ताराम : *परन्तु हिन्दुस्तान में ऐसी कोई बात न थी।*

सदानन्द : *कौन कह सकता है ? अब मनाही हो गयी हो वहाँ।*

अभी तक वहाँ लड़ाई नहीं थी, अब शुरू हो गयी है—अब मनाही भी हो गयी होगी।

शान्ताराम : *मुझे नहीं लगता। आखिर तुम लोग यहाँ से बोलोगे भी क्या? क्या कह रहे हो, सो तो रोज सुन ही रहे हैं इससे अधिक और क्या कहोगे?*

सदानन्द : *वही क्या कम है? कम-से-कम उतना ही सुनने दो उन्हें......*

शान्ताराम : *हिन्दुस्तानी इतने भोले नहीं। सच और झूठ में क्या अन्दर है, यह वे बखूबी जानते हैं। गप्पें दे रहे हे कोरी? ऐसी गप्पों से क्या कभी प्रचार हुआ है? और अब प्रचार किस बात का कर रहे हैं? लड़ाई आरम्भ हो गयी है। अब तुम्हारे कहने पर कौन विश्वास करेगा? मुझे ही देखो—यहाँ तड़प रहा हूँ—एक साल हो गया—कुछ भी नहीं लिखा—लिखने की स्वतन्त्रता होती तो तुम लोगों को सिखाता कि प्रचार कैसे किया जाता है। परन्तु यहाँ तो सब प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। स्वयं तो कुछ समझते नहीं हो और दूसरों पर विश्वास नहीं है। ये लोग जैसा लिख दें, वही बोलो! हिन्दुस्तानियों का हृदय नहीं है उस लेखन में!*

सदानन्द : *यहाँ जापान के विचार चाहिये···हिन्दुस्तानियों के विचारों की जरूरत नहीं। उनके जो विचार हैं-वे जो कहना चाहते हैं, उसे आप कैसे समझेंगे?*

शान्ताराम : *अच्छा, इतना समझते हो और फिर भी प्रचार करते हो? अनुवाद करते हो जापानियों के लेखों का? इतने थोड़े समय में उनकी भाषा सीख ली यही बहुत हो गया! हर आदमी जब देखो तो जापानी में ही बात करता है! जापानी में लिखता है! सड़क का हमाल भी जापानी पढ़ता है! शर्म नहीं आती? हिन्दी सीखो—*

हिन्दी में बोलो···यह तो कुछ करोगे नहीं, जापानी लिये बैठे हो सब लोग !······

सदानन्द : *जरा धीरे बात कीजिये, काका । कोई सुन लेगा ? बैठिये न ?*

शान्ताराम : *बैठा-बैठा ऊब गया हूँ। बाहर जाने की सोचता हूँ, तो तुम जाने नहीं देते । तुम्हारी मौसी चलती-फिरती है, इसी पर सन्तोष है मुझे···इन तीन महीनों में काफी सुधर गयी है वह । है न ?*

सदानन्द : *इसका श्रेय उन दोनों लड़कियों को है । वे मौसी को एक मिनट के लिये भी अकेली नहीं छोड़तीं । अब उनका स्वास्थ्य काफी अच्छा हो गया है यहाँ ।*

शान्ताराम : *वह अच्छी हो गयी है । परन्तु मुझे क्या हो गया है ?* (जोर से हँसता है ।) *मुरदे सरीखा बैठा रहता हूँ घर में···तुम कमाते हो, मै बैठा-बैठा मुफ्त का खा रहा हूँ । कितने दिन चलता रहेगा ऐसा ?*

सदानन्द : *यदि नौकरी करना चाहें, तो आज नौकरी मिलना कठिन नहीं है । पर आपका भय लगता है मुझे । कहाँ क्या कह देंगे आप, इसका कोई ठिकाना नहीं !······*

शान्ताराम : *तुम सच कहते हो सदू । इसलिए ही तो चुप बैठा हूँ । इसीलिऐ तो मुफ्तखोरा बना हूँ । मै नहीं चाहता कि मेरे कारण तुम पर कोई संकट आ जाय ।*

[क्षण-भर के लिये स्तब्धता । सदानन्द मेज के पास जाकर लिखने लगता है । शान्ताराम उठकर इधर-उधर टहलता है । इसी समय रूपा आती है । द्वार में ही ठिटक जाती है । शान्ताराम द्वार के पास जाता है ।

गम्भीर मुद्रा से वह उसके कान में कुछ कहती है ! शान्ताराम आगे बढ़ता है ? फिर रूपा द्वार से ही उसे "काका" कहकर पुकारती है। सदानन्द चौंक कर पीछे मुड़कर देखता है !]

शान्ताराम : *आ गयी ? ···आ। उसे कहाँ छोड़ा ?*

रूपा : *मैं उनके साथ न थी। हमारा क्लास था आज···वहाँ गयी थी।*

शान्ताराम : *अच्छा ? यह बात थी ?*

रूपा : (सदानन्द के पास जाकर) *क्या हो रहा है ?* (उसके कन्धे पर से झाँककर देखती है)। *वही ? शायद वही परचे हैं ये।* (सदानन्द कागज छिपा लेता है।)

शान्ताराम : *कौन से परचे।*

सदानन्द : *चुप रहिए।*

शान्ताराम : *क्यों ?*

सदानन्द : (रूपा को आँख का इशारा कर के) *नहीं, वैसी कोई खास बात नहीं हैं। सरकारी काम कर रहा हूँ।*

शान्ताराम : *लेकिन इसने अभी किन्हीं परचों के बारे में कहा न ?* (सदानन्द की मेज पर रखे परचों को रूपा झट-से खींच लेती है और शान्ताराम के हाथ में देने लगती है।)

रूपा : *ये देखिये।*

सदानन्द : (घबड़ाकर) *अरे, इधर लाओ उन्हें। कम-से-कम उनके हाथ में तो न जायँ वे।*

शान्ताराम : *आखिर यह है क्या ?* (पढ़ने लगता है) *"हिन्दुस्तानी भाइयो, किसके लिए लड़ रहे हो ? क्या बैरियों को अपने घर में घुसाने के लिए ? जापानी बन्दर दगाबाज हैं······*

सदानन्द : *धीरे-धीरे ! पढ़ना ही है तो मन-ही-मन पढ़िए न... चिढ़ कर) जाने कौन कर रहा है यह शरारत ?*

रूपा : *जाने कहाँ से और कैसे टपक पड़ते हैं ये परचे ? दूकानों में होटलों में, जहाँ भी जाओ, ये परचे मौजूद हैं—फौज में भी पहुँ गए हैं ये। हर आदमी चोरी से पढ़ता है इन्हें। तुम्हारे पास कहाँ से आए !*

सदानन्द : *अनुवाद के लिए रोज मेरे पास आते हैं।*

शान्ताराम : (पढ़ते हुए) *और तुम इनका जापानी में अनुवा करते हो।*

सदानन्द : *मेरी ड्यूटी ही है यह।*

शान्ताराम : *क्या अनुवाद बिल्कुल शुद्ध करते हो ? बीच-बीच कुछ वाक्य नहीं छोड़ देते ?*

सदानंद : *मेरे ऊपर एक अफसर भी है न, जो मेरे अनुवाद की जाँ करता है।*

शान्ताराम : *क्या वह भी हिन्दुस्तानी है ?*

सदानन्द : *हाँ, हाँ, हिन्दुस्तानी ही है...उसे ऐसे परचों से भयानक चिढ़ है...वह इन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं करता। हमारे आफिस सभी इसी तरह के लोग हैं। वहाँ थोड़ी भी तिकड़म नहीं चल सकती। वे सब हिन्दुस्तानी भले ही हों, फिर भी उनका पूरा विश्वास है जापानियों पर। उन लोगों ने अपने आपको वृहत पूर्व एशिया-सङ्गठन के लिये अर्पित कर दिया है।*

शान्ताराम : *अरे वाह, इसे सङ्गठन कहते हो ? यह कैसा सङ्गठन यह सङ्गठन नहीं, दगा है—पूरी धोखेबाजी है यह...और ऊपर से इ*

लोगों को एक सिर-फिरा नेता मिल गया है···वही भुला रहा है इन लोगों को ।

सदानन्द : चुप हो जाइए, चुप हो जाइये···ऐसी कोई बात न कहिए यहाँ वह बहुत बड़ा आदमी है ।

शान्ताराम : सारे विश्वासघाती बड़े मनुष्य होते हैं कुछ दिनों के लिए । सूर्याजी पिसाल भी बड़ा था—राघोबादादा भी बड़ा था—पर कितने दिन ? —अपना काम पूरा होते तक ! जहाँ उनका—काम पूरा हुआ कि वे ककड़ी की तरह काटकर फेंक देंगे, तब पता चलेगा तुम्हारे इस बड़े आदमी को ।

सदानन्द : पढ़ लिया आपने ? तो अब दे दीजिये मुझे । मुझे यह अनुवाद शीघ्र ही पूरा करना है !

शान्ताराम : (परचे को उसके मुँह पर फेंककर)—अनुवाद के लिए तो कम-से-कम पढ़ लेते हो, वरना हाथ में भी न पकड़ते । बड़े राज-भक्त हो न ! पर कैसी यह राज-भक्ति ? कल किसके नौकर थे ? आज किसके नौकर हो ? और कल क्या होगा, यह कौन कह सकता है !·· फिर अपनी उसी पुरानी स्थिति पर आ जाओगे । यह नौकर का जीवन है । नौकर बोझ ढोने वाले गधे होते हैं । पीठ पर बोझे रख दिये कि चलना चाहिये—बस, इतना ही वे जानते है । पीठ पर बोझा कौन लाद रहा है, यह जानने की उन्हें परवाह नहीं होती । जब यहाँ देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं बड़ा भाग्यवान हूँ । तुम लड़किय अच्छी···कम-से-कम ऐसी नौकरी तो नहीं करनी पड़ती तुम्हें । लेकिन अब एक दूसरा ही पागलपन जो घुस गया है न तुम्हारे दिमाग में ! फौज में भरती होना चाहती हो ! क्योंजी, तुम लोगों को फौज में भरती होने की क्या जरूरत ? अब कौन से मैदान मारने वाली हो तुम ?

रूपा : (हँसकर) वह तो आपको दिख ही जायगा बञ्ज !

शान्ताराम : *मुझे कुछ नहीं दिखेगा। सिर्फ रोककर रख रहे हैं तुम्हें बड़े काइयाँ हैं ये पीले बन्दर।*

सदानन्द : (लिखता हुआ) *धीरे-जरा धीरे बोलिये काका !*

शान्ताराम : *अच्छा बाबा, नहीं बोलता अब। क्या है आज का समाचार रूपा ?*

रूपा : *मैं कुछ भी पूछताछ नहीं करती।*

शान्ताराम : *अरी, लड़ाई पर जा रही है न तू ? फिर इस तरह अंधकार में रहकर कैसे चलेगा ? क्या तुझे रोज की खबरें नहीं रखनी चाहिए ?*

रूपा : *इसकी क्या जरूरत है ? सिपाही का काम आज्ञा मानना है। सिपाही को खबरो से क्या वास्ता ?*

शान्ताराम : *क्या अखबार नहीं पढ़ती तू ?*

रूपा : *पढ़ती क्यों नही ··· पढ़ती हूँ।*

शान्ताराम : *क्या था उसमें ?*

रूपा : *विज्ञापन···बियर के—टायलेट मटीरियल के, दवाओं के, रेडियो के · अखबारों के ये विज्ञापन बड़े सुन्दर होते हैं।*

शान्ताराम : *तो मतलब यह कि तू सिर्फ विज्ञापन ही पढ़ती रहती है। बहुत खूब ! लड़ाई की खबरें पढ़ने का विचार ही नहीं उठता तेरे मन में ? भाग्यशालिनी है। और मैं भी भाग्यवान हूँ···यदि मुझे अखबार मिल जाता तो आरम्भ से अन्त तक पढ़ डालता··· परन्तु जापानी अखबार को खड़ा पकड़ूँ या कि आड़ा, यही मेरी समझ में नही आता है। अमला पढ़ती है और कुछ खबरें सुना देती है पर उनमें की एक भी मुझे सच नहीं लगती···सारा मिथ्या*

प्रचार है। क्यों रे सदानंद, क्या अभी तक तेरा अनुवाद पूरा नहीं हुआ ?

सदानन्द : ध्यान चला जाता है न उधर ?

शान्ताराम : उधर, याने किधर ?

सदानन्द : आप लोगों की बातों की तरफ।

शान्ताराम : ये बातें तुम्हारे लिए नहीं हैं। तुम अपना काम करो। इधर ध्यान ही क्यों देते हो ?

सदानन्द : काका, आपकी बातें ही कुछ ऐसी है कि ध्यान चला ही जाता है उधर और फिर इधर ध्यान नहीं लगता... ..

(कागज दूर करके) आखिर हुआ तो पूरा...अब एक बार और जाँच लेता हूँ—कहीं काका की बातें ही तो इस अनुवाद में न आ गयी हों ! (हँसता है।)

शान्ताराम : तेरे काका को यदि भाषण देने की स्वतंत्रता होती तो लावा उगलता। लावा से जापानी परिचित हैं ही ! रोज ज्वालामुखी भड़कते हैं · उनके देश में नगर के नगर बेचिराग हो रहे हैं...दूसरे देशों में ऐसी आपत्ति नहीं आती, इसीलिए ये लोग दूसरे देशों पर इस तरह आग बरसा रहे हैं ! जीभ जैसे बिल्कुल सूख गयी है। क्योंकि अन्तःकरण की आर्द्रता अब जिह्वा तक पहुँचती ही नहीं।

रूपा : काका, आइए। आप मुझ से ही बातें कीजिए।

शान्ताराम : हाँ। अब तुझ से ही बातें करना चाहिए मुझे। इस जापानी औंधे-घड़े पर अब व्यर्थ पानी उड़ेलने से क्या लाभ ? तुझ से बातें करूँगा, तो तू सुनेगी और दूसरे लोगों तक भी उन्हें पहुँचाएगी। वे फिर और दूसरे लोगों से कहेंगे—इस तरह बातों-बातों में वह बात फैलेगी !—फौज़ तैयार कर रहे हैं बेटे ! और लड़ेंगे किस के

साथ ? आग किस पर बरसाएँगे ? किसका संहार करेंगे ? अपने ही भाई-बन्दों का न ? बंदूकें दे रहे हैं—जाओ, ले लो उन्हें अपने हाथों में—और चला दो गोलियाँ इन्हीं पीले बंदरों पर। उन्हें जरा अपने ही घर की गोलियों का मजा तो चख लेने दो। सारे रोग ठीक हो जाएँगे···बिल्कुल धनवंतरी की मात्रा है यह······

सदानन्द : (जल्दी जल्दी आकर शान्ताराम के मुँह पर हाथ रखता हुआ) कह रहा हूँ न कि आप चुप रहिए। आप तो हम सब लोगों के गले में फाँसी लगवा देंगे।

रूपा : फाँसी तो लग ही चुकी है। अब और क्या लगेगी ?

सदानन्द : क्या यह तुम कह रही हो, रूपा ? तुम तो औरतों की फौज तैयार कर रही हो न ? उस फौज की नेत्री हो तुम······

रूपा : हाँ-हाँ ! मैं ही कह रही हूँ। सुना नहीं अभी ? इतने पर भी न समझे ?

सदानन्द : पर पहले ?······

रूपा : पहले की बात पहले से रही। काका आये—उन्होंने मेरी आँखों में नया अंजन आँजा—मुझे नयी दृष्टि दी। हम नयी दृष्टि से देखने लगे—देखते-देखते मन में विचार आने लगे—विचार करते-करते कल्पनाएँ सूझने लगीं—कल्पना के चित्र सजीव हो गये—हलचल करने लगे ··बोलने लगे ··कहने लगे···(रुकती है।)

शान्ताराम : (रूपा की बातें सुनते समय इस तरह हँसता है जैसे मन में गुदगुदी हो रही हो) वह कल्पना नहीं है बेटी। वे विचार अन्तस्तल में थे। उन पर गर्द जम गयी थी। मेरी फूँक से वह दूर हो गयी। उत्साह वही है-उमंग वही है···अभिमान भी वही है···परन्तु दिशा बदल गयी है। समझे सदानंद, तुम अपनी दिशा नहीं बदल सकते···नौकर बनकर तुम पंगु हो गये हो···(सदानन्द की ओर टकटकी

लगाये) तुम्हें हो क्या गया है ? ऐसे सुन्न क्यों हो गये हो ? भय की दीवाल के नीचे इस तरह कब तक दबे रहोगे ? मर्द हो तुम···तुम्हें भय काहे का ?······

सदानन्द : भय काहे का ? यही सोच रहा हूँ—मुझे भय क्यों लग रहा है ? पेट नहीं भरता इसलिए अनुवाद कर रहा था इस परचे का—अन्तरतम में इस परचे में लिखा मजमून ही मूर्त हो रहा था—यह देखकर कि जो मैं नहीं कह सकता था, उसे दूसरा कह रहा है, मुझे बड़ी खुशी हुई। क्या वह खुशी ही थी ?

रूपा : नहीं—वह खुशी नहीं—किन्तु दुख का परिहार था वह। वह आनन्द नहीं ! दुख का अन्त है वह। उस अन्त से अब आनन्द का सूत्रपात होगा······

सदानन्द : (एकदम चौंककर)···नहीं-नहीं, ऐसा कुछ न कहो ! कम-से-कम तुम तो न कहो रूपा। तुम कहती हो, तो लगता है जैसे किसी ने भाला चुभा दिया हो (सीने से हाथ लगाकर) यहाँ-यहाँ ! बहुत महसूस होती है यह चुभन। मैं यह क्या कर रहा हूँ ? वैरी के घर पेट जला रहा हूँ। अपने भाई-बंदों से बैर मोल ले रहा हूँ ?

शान्ताराम : (उठकर सदानन्द की पीठ थपथपाता हुआ) बैठो यहाँ। किये जाओ अपना काम जैसा कर रहे हो, अब तो जान गये न ? मालूम हो गया न कि कहाँ पेट भर रहे हो ? यही क्या कम हुआ ? एक जागा··· दस और जाग जाएँगे। इन परचों को पढ़कर कुछ और लोग भी जाग गये होंगे ! जापानी वैरी हैं हमारे··· यह वृहत पूर्व एशिया का संगठन नहीं···आक्रमण है हमारी मातृभूमि पर···लोग इतना समझ जाएँ कि काफी है वह तुम लोगों को गलत राह पर ले जा रहा है ! जीना है तो हम खुद

जी लेंगे। अगर मरना है तो हम खुद मरेंगे। हमें किसी की मदद की जरूरत नहीं। हमारी मातृ-भूमि की पराधीनता के बंधन बैरियों की कृपाणों से नहीं कट सकते। संभाजी ने भी एक बार यही भूल की थी। इसी प्रकार वह भी बैरी के घर चला गया था। समय पर ही उसकी आँखें खुल गयीं, इसलिए फिर लौट आया। आँखें क्या खुलीं···जब बाप ने उसकी आँखों में तेज अंजन आँजों, तब कहीं वह ठीक राह पर आया—आगे चलकर बाप मर गया और उसे मार्ग दिखानेवाला कोई न रहा···इसीलिए संभाजी ने महाराष्ट्र का सत्यानाश कर डाला। (हँसकर) सुन रहे थे शायद ?—और क्या तू भी सुन रही थी ?—हमारे महाराष्ट्र का इतिहास तुम पंजाबी लोग नहीं जानते ··बंगाली लोग भी नहीं जानते · इसीलिए तो अकड़ रहा है वह !

रूपा : उनसे मिलकर एक बार उन्हें समझा दीजिए न ?

शान्ताराम : विश्वासघाती का मैं मुँह नहीं देखता। इससे तो जो तुझसे कह रहा हूँ, यही मुझे पर्याप्त प्रतीत होता है। देखो, सदू भी डगमगाने लगा······

(अमला और सावित्री प्रवेश करती हैं।)

अमला : धर-पकड़ हो रही है बाहर।

सदानंद : काहे की ? किस की ?

अमला : वे परचे निकलते है न ?······

सदानंद : मैं ही तो करता हूँ उनके अनुवाद······

अमला : पता लगाया जा रहा है कि परचे कहाँ से आते हैं। दस-पन्द्रह लोगों को गिरफ्तार भी कर लिया गया है। (रूपा शान्ताराम की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखती है और गर्दन हिलाती है।) अब जाने

उनका क्या होगा ? बहुत तंग करेंगे उन्हें। आप नहीं जानते काका, चिढ़ जाने पर जापानियों की तरह नराधम दूसरे कोई नहीं होते।

सदानंद : *जरा धीरे बोल न ? अब और कितने बार जताऊँ तुझे ?*

सावित्री : *वह देखा, तो जरा अच्छा लगा……*

रूपा : *क्या देखा ?*

सावित्री : *कि वे पकड़े जा रहे हैं……*

रूपा : *उनकी गिरफ्तारी से आप को अच्छा लगा ?*

सावित्री : *आदत ही पड़ गयी है यह ! यूँ ही कोई किसी को नहीं पकड़ा करता…इतने महान बलशाली पर सड़क के लोगों को गिरफ्तार करते हैं। उनसे डरते हैं, तभी तो पकड़ लेते हैं उन्हें। फौजें हैं, तोपखाने हैं, हवाई जहाज हैं, जहाजी बेड़े हैं…परन्तु बीता-भर परचों से उनके कलेजे काँप उठे हैं। हिन्दुस्तानियों को अपनी फौज में लेने के लिए इनसे कहा किसने था ? क्या जापानी नहीं थे ? लड़ना ही चाहते हैं, तो सिर्फ जापानी ही लड़ें ? हिन्दुस्तानियों को क्यों मिलाते हैं अपने साथ ? और मिलाया है, तो फिर परचों से क्यों घबराते हैं ?*

शान्ताराम : *वे घबड़ाते नहीं हैं, सावित्री। सत्ता का लक्षण है वह ! ऐसा कुछ तो होगा ही। इसके बिना बेदिली कैसे पैदा होगी ?*

सदानंद : *हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग अब चुप रहिए।*

[सब लोग क्षण-भर के लिए चुप बैठते हैं ।]

शान्ताराम : *लो, हो गया तुम्हारे मन का ? अब तो खुश हो ?*

रूपा : *नहीं…यहाँ तो रोंगटे खड़े हो गये। बोलने वाले जब चुप*

बैठ जाते हैं, तो उनके मूक श्वासों से बदन में सिहरन दौड़ जाती है।

सावित्री : *तो अब बातें किस विषय पर करें ?*

अमला : *अब हम लोग कुछ घर-गिरस्ती की बातें करें। रसोई के बारे में कुछ बोलें · बर्तन-भांड़े माँजने और झाड़ा-बुहारी करने की बातें करें···और ये पुरुष बातें करेंगे प्रेम की···तारासिहजी नहीं आए ?*

रूपा : *प्रेम की बातों का नाम लेते ही तारा भैया की याद आ गयी शायद ?*

अमला : *जी हाँ ! दादा यहीं हाजिर हैं। इसलिए उन्हें याद करने की तुम्हें जरूरत नहीं।*

सदानंद : *अब सभी यादों का डर लगने लगा है मुझे। ऐसा लगता है कि कुछ भी याद न आवे। बिलकुल मशीन की तरह काम करता रहूँ·····*

शान्ताराम : *क्या अनुवाद करते रहोगे ?*

सदानंद : *हाँ ! पेट के लिए कुछ-न-कुछ काम करके जीना चाहिए न ?*

रूपा : *जीना चाहिए—पैदा हुए हैं इसलिए जीना चाहिए। क्यों किसी ने यह जन्म दिया हमें···और वह भी इस विदेश में···*

शान्ताराम : *और स्वदेश में भी जन्म लेकर हमने कौन से दिये जलाये ? मरने के लिए आखिर विदेश ही में तो आये हैं न ? कहते हैं उधर हिन्दुस्तान में सब ठीक-ठाक है। फिर हम यहाँ क्यों आये ? ऐसी मुल्कगीरी से क्या फायदा ? आखिर रहे तो क्लर्क ही···संपादक काहे के···सिर्फ एक क्लर्क थे हम। एक*

रेखा खींच दी थी, और उसके पार जाने की हमे मनाही कर दी थी···यहाँ तो वह भी नहीं है···यहाँ तो वह सीमा-रेखा ही पुछ गयी है···सीमा-हीन हो गया है सारा काम। इनकी ही हाँ में हाँ मिलाना चाहिए ··ये जो लिखें, वही पढ़ना चाहिए···जो कहें वही लिखना चाहिए ··मन में अपना कोई निजी विचार नहीं कर सकते यहाँ ··यहाँ पर जापानी बोलना है··जापानी लिखना है··· जापानी होना है। परन्तु यह सब किस लिए? तो कहते हैं कि वृहत-पूर्व एशिया के संगठन के लिए! मैं कहता हूँ कि पहले हम भारतवर्ष की ओर तो एक दृष्टि डालें···पहले भारतवर्ष को ही क्यों नहीं संगठित करते? उसे सङ्गठित हो जाने दो · फिर करेंगे हम सारी दुनिया का काम। जब तक लड़ाई नहीं थी, तब तक सङ्गठन की कभी कोई बात नहीं निकाली इन बन्दरों ने? अब बड़ी-बड़ी बातें कर रहे है। हमारी उन्हें जरूरत है, इसीलिए है, ये सब बातें ··इसीलिए दे रहे हैं अपनी बन्दूकें हमारे हाथों में। उँह! सब मज़ा ही मज़ा है।

[तारासिंह आता है। उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया है। डरा हुआ-सा आकर वह सदानन्द की पीठ पर हाथ रखता है।]

तारासिंह : अब तो जीना मुश्किल हो गया है यहाँ! कितने ही लोग गिरफ्तार कर लिये गये? कौन कर रहा है यह शरारत? कौन हैं ये चांडाल? अभी तक सर्वत्र सुख और शान्ति थी। इसी समय किसने फेंके ये कागजी बम? ये लोग इस तरह लुके-छिपे नीचे से क्यों खोद रहे हैं? हिम्मत है तो मर्द की तरह आगे क्यों नहीं आते? कितने ही बेगुनाह, बिना किसी कारण के घोर यंत्रणायें भोग रहे होंगे?

सावित्री : बेगुनाह क्यों कहते हो? क्या यूँ ही कोई किसी को

पकड़ता है ? क्या ये जापानी लोग इतने पागल हैं ? उन्हें कुछ न कुछ पता जरूर ही लगा होगा।

तारासिंह : आज पूरा महीना हो गया ··धर-पकड़ हो रही है। सैंकड़ों लोग जेल में ठूँस दिये गये। परंतु अभी तक उन परचों का निकलना बंद नहीं हुआ है। कौन हैं ये देशघातक ?

शान्ताराम : कौन हैं ये देशघातक ? कहीं भी जाओ, ऐसे कुछ लोग होते ही हैं वहाँ। लड़ाई लड़ा देनेवाले ये कूटनीतिज्ञ मजे में घर बैठे हैं और लड़ाई में मरनेवालों को बैठे देख रहे हैं। लड़ने वाले उधर लड़ रहे हैं और ये लोग इधर दाँव पर दाँव चल रहे हैं, उन्हीं की तरह ये भी हैं !···उन्हीं में के हैं ! जाने वाले जेल जाते हैं, यंत्रणायें भोगते हैं, कष्ट उठाते हैं और ये लोग इधर परचे निकालते हैं। व्यर्थ की बातें लिखने में किसी का क्या बिगड़ता है ? कलम उठाई और घसीट मारा कुछ भी ! हुँः ! ये लोग तो चाहे जो लिख मारते हैं और सजा पाते हैं दूसरे ही···है न तारासींग ?

तारासिंह : आप ने बिल्कुल ठीक कहा, चाचा। यही मैं कहता हूँ। क्या फायदा है इन परचों से ?

रूपा : सच ! किस काम के हैं ये परचे ?

तारासिंह : क्या कहा रूपा ?

रूपा : कुछ नहीं···मैंने कहा, किस काम के हैं ये परचे ? सिर्फ कागजों की बरबादी है। भरपूर कागज मिलते हैं इसलिए उन पर घसीट देते हैं कुछ भी और बाँट देते हैं कहीं भी।

शान्ताराम : (अपने आप ही हँसता हुआ) सारा मूर्खों का ही जमघट हो गया है ! सुध-बुध भूले हुए मूर्ख को अपयश की परवाह नहीं होती। इसी तरह के कुछ मूर्ख लोग होंगे ये ! (हँसता है।)

इस लड़ाई के जमाने में मूर्ख की मूर्खता में उफान आया करता है···नीचे आग जो जलती रहती है न? किसी को ये जलती लकड़ियाँ पीछे खींच लेना चाहिए। इसके बिना यह उफान बंद न होगा। तुम जैसे सच्चे दिल के लोग हैं, तारासींग, इसीलिए हमें यह सब मालूम हो जाता है। वर्ना किस से तुलना करते? रूपा, तुझे कोई काम है क्या? कहाँ जाना है?······

सदानंद : *मुझे जाना है··आफिस जाना हैं इन कागजों को लेकर।*

शान्ताराम : *तो फिर जाओ न। तुम शायद लौट आये हो काम पर से, क्यों तारासींग?* (आह भरकर) *यहाँ यदि कोई बेकार है तो अकेला मैं ही······*

सावित्री : *और मैं भी!*

शान्ताराम : *नहीं—तुम चूल्हा फूँकती हो। अमला झाड़-बुहार करती है। नौकर भी चले गये हैं न अब लड़ाई पर? चल रूपा हम अपनी संस्कृत की पढ़ाई शुरू करें···*(एकदम उठकर भीतर जाता है। रूपा उसके पीछे-पीछे जाती है। सदानन्द अपने कागजों को समेटता है। कोट कंधे पर रखकर और टोपी हाथ में लिये चल देता है।)

सावित्री : *अब मैं ही क्यों यहाँ रहूँ? मैं भी जाती हूँ चूल्हा जलाने—*

अमला : *और मैं?* (सावित्री उसकी ओर देखकर हँसती है और चल देती है।) *समझ गयी। जेठे-सयाने बड़े चतुर होते हैं, है न?*

तारासिंह : (गंभीरता से) *अमला बहुत बुरे दिन आ रहे हैं। जब*

यह शासन बदला था, तब हमें कुछ भी महसूस न हुआ। लगा कि सब कुछ ठीक से जम गया है। परंतु आजकल जो ये परचे निकलने लगे हैं, उनके कारण हमारे जापानी शासक बड़े क्षुब्ध हो उठे हैं। मुझ पर भी आरोप किया आज मेरे अफसर ने......

अमला : क्या नाकानिशी ने ? वह तो तुम्हारा बड़ा घनिष्ठ मित्र है न ?

तारासिंह : हाँ। उसी ने। आज तक मैं उसे अपना पक्का दोस्त ही समझता था। परंतु आज उसका रुख एकाएक बदल गया। शोनान में रहने वाले प्रत्येक भारतीय की ओर वे अब संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं। कल क्या हो जाय, इसका कोई ठिकाना नहीं। (क्षण-भर स्तब्धता) अमला, एक प्रश्न पूछूँ ? नाराज तो न होगी ?

अमला : क्यों, क्या तुम्हें मुझ पर संदेह हो रहा है ? (और हँसती है।)

तारासिंह : यह हँसने का समय नहीं है, अमला। बड़े विलक्षण हैं ये जापानी लोग। जब तक दोस्त है, तब तक अपने प्राण तक देने को तैयार रहते हैं...और जब दुश्मन हो जाते हैं, तो इस तरह मारते हैं कि मुश्किल से जान निकलती है ! आज जब उसने संदेह प्रकट किया, तो मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। तब से मेरा मन कैसा अधीर हो उठा है। कल मर जाने से पहले, आज अपने मन की सारी इच्छाएँ पूरी कर लेने को जी चाहता है। हम लड़ाकुओं की जात बड़ी बुरी होती है। हममें विवेक बहुत कम होता है। और लड़ाई के वक्त तो बिलकुल ही कम हो जाता है......

अमला : ऐसी हालत में विवेक के अभाव में तुम क्या करते ?

तारासिंह : विवाह होते तक न ठहरता...(चट-से नीचे बैठ जाता

है।) मनुष्य के सिर पर लड़ाई का उन्माद चढ़ते ही वह एकदम जानवर हो जाता है···मनुष्यता के बिलुप्त हुए बिना वह लड़ नहीं सकता। तुम मराठों की संगति से मैं कुछ विवेकशील हो गया हूँ, इसीलिए पूछ रहा हूँ तुमसे···(ठहर जाता है।)

अमला : क्या ?

तारासिंह : हम विवाह कर लें !

अमला : इतनी जल्दी क्या पड़ी है तुम्हें ?

तारासिंह : मुझे लड़ाई पर जाना है।

अमला : लड़ाई पर जाना है ? पर तुम तो लड़ाई पर नहीं जाना चाहते थे न ?

तारासिंह : हाँ। पर अब वह बात मेरे हाथ की नहीं रही। मुझे लड़ाई पर जाना होगा · डिक्रूज जायगा···सदानंद जायगा······

अमला : दादा जाएँगे ?

तारासिंह : जाना ही पड़ेगा···हर आदमी को जाना पड़ेगा। वहाँ इच्छा का प्रश्न ही नहीं है। यह साबित होना चाहिए न, कि यहाँ का हर भारतीय आज़ाद हिंद फौज में दौड़-दौड़कर भरती हो रहा है।

अमला : अच्छा ! तो फिर तुम सब लोग अब लड़ाई पर जाओगे ! जाने अपने पैरों से जाने वाले किनके पैरों से लौटेंगे ?···या कि लौटेंगे ही नहीं······

तारासिंह · इसीलिए तो कहता हूँ कि हम विवाह कर लें।

अमला : ठीक है। जिसने प्राणों की बाजी लगा दी है, उसके पास कहाँ का विवेक और कहाँ का अविवेक ? चलो, कर लें विवाह···कम-से-कम पेंशन ही मिलेगी···या न जाने, शायद हम

औरतें भी तुम लोगों की तरह अपनी खुशी से लड़ाई पर जाकर काम आजाएँगीं···उतनी ही बचत हो जाएगी रसद की। हमारे बाद जो बचेंगे कम-से-कम उनकी पाँचों घी में रहेंगीं। परन्तु जो बच रहेंगे, वे हम-तुममें से नहीं होंगे। बच रहेंगे वे-वे (हाथ से नाक दबाकर दिखाती है।)

तारासिंह : कोई भी बचें। पर हम नहीं रहेंगे यह निश्चित है। उनका रास्ता साफ करने के लिए किसी न किसी की लाशें तो बिछना ही चाहिए न? सामने के मोरचे पर जाने वाले हम लोग उनके लिए रास्ते बना देने वाले हैं। इसी के लिए मरना है हमें। चलो अमला···अब किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं···'ना' सुनने के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं······

अमला : तो चलो फिर······

[दोनों हाथ में हाथ डाले जाने लगते हैं। इसी समय द्वार पर डिक्रूज आता है।]

डिक्रूज : कहाँ चले?

अमला : क्यों कैसे पूछा?

तारासिंह : विवाह करने के लिए जा रहे हैं हम।

डिक्रूज : किसका?

तारासिंह : अपना···हम दोनों का···

डिक्रूज : बहुत खूब! जब मौत नजदीक है, तब ऐसे विचार आएँगे ही।

अमला : तो क्या तुम्हें भी मालूम हो गया? (डिक्रूज धीरे-धीरे गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहने का इशारा करता है।) फिर हम से कोई भूल तो नहीं हो रही है?

डिक्रूज : *यह मैं कैसे कहूँ ? यदि मेरी कोई होती, तो मैं भी यही करता...विवाह होने की भी राह न देखता !*

तारासिंह : *सुनो, सिक्ख ही नहीं, ईसाई भी यही कहता है !*

डिक्रूज : *यह लड़ाई एक छूत की बीमारी है। इस बीमारी के कीटाणु जब शरीर में घुस जाते हैं तो सब लक्षण समान ही होते हैं...प्लेग की तरह ! वही बुखार-वही गिल्टी-वही मौत !* (हँसकर) *उसी तरह यह विवाह भी है।*

अमला : *तो फिर हम जाएँ ?*

डिक्रूज : *जाओ।*

अमला : *आशीर्वाद दो न ?*

डिक्रूज : *क्या आशीर्वाद दूँ ? क्या* 'God Bless you' (गॉड ब्लेस यू) *कहूँ ? पर 'गॉड' बेचारा तो उलझा हुआ है इस लड़ाई के हिसाब-किताब में। संसार का कल्याण तो उसकी गिनती में भी नहीं है इस वक्त। उससे कुछ कहने से कोई लाभ नहीं। यदि कहूँ 'सौभाग्यवती भव', तो ये हजरत जा रहे हैं लड़ाई पर...जान-बूझकर मरने के लिए...कौन-सा आशीर्वाद दूँ ?*

अमला : *मुझे इतना ही आशीर्वाद दो कि मैं स्वतंत्र भारत के नागरिकों की माँ बनूँ !*

(भीतर से शान्ताराम की आवाज-'तथास्तु')

तारासिंह : *क्या यह आकाशवाणी हुई ?*

शान्ताराम : (बाहर आकर) *आजकल की आकाशवाणी नाश की हुआ करती है। यह आशीर्वाद है सृजन का...नये संसार के जन्म का। यह आशीर्वाद देव के मुँह से नहीं निकलेगा-मनुष्य के मुँह से निकलेगा तभी यह सार्थक होगा।* (तारासिंह और अमला की पीठ

ठोककर) जाओ अब । (उन्हें धक्का देकर बाहर निकालता है । स्वयं कोच पर बैठता है और मुँह ढांककर रोने लगता है ।)

डिक्रूज : (आँखें पोंछकर गद्गद् स्वर में) आप रो रहे हैं काका ?

शान्ताराम : (मुँह पर से हाथ दूर करके डबडबाई आँखों वाले चेहरे से गद्गद् होकर) कौन बेवकूफ कहता है कि मैं रोता हूँ ? अपने बेटे की बलि देते समय क्या राजा श्रियाल रोया था ?···अपने बच्चे की बलि देते समय क्या गोरा कुम्हार रोया था ? नयी मिट्टी से नये घड़े बनाने के लिए अपने बच्चों की इसी प्रकार बलि देनी पड़ती है, तभी तो नया विश्व बनता है । उस नये विश्व के निर्माण के लिए ये दो पहले बलिदान हैं···फाँसी की वेदी पर नहीं···विवाह की वेदी पर···विवाह के इस बंधन से गुलामी के बंधन टूटेंगे । मरने के लिए जा रहे हैं ··दुनियाँ को जीवित करने के लिए **मरने** जा रहे है ! कोई पहले, कोई बाद । हर व्यक्ति को जाना ही है कभी न कभी ··**मारने** के लिए नहीं · **मरने** के लिए ! स्वयं मर कर दूसरों को जीवित करने के लिए । अभी थोड़ी भूल कर रहे हैं ये···मारने का विचार है उनके मन में यह मारने का विचार उनके मस्तिष्क से निकल जाना चाहिए । हिंसा का सर्वनाश किये बिना मरनेवाली दुनिया को जीवित नहीं किया जा सकता । हुँः ! यह किसी के ध्यान में ही नही कि दुनिया को जिन्दा रखना चाहिए । स्वयं जीवित रहना चाहते हैं···स्वयं बड़े बनना चाहते हैं ··दूसरों को मार कर उनकी लाशों पर कदम रखकर नये सिंहासन पर चढ़ना चाहते हैं । यह सब भूल जाना होगा । इसे भूले बिना जिस प्रकार मरना चाहिए उस प्रकार नहीं मरा जा सकेगा···(आँखें पोंछकर हँसता है ।) कुछ भी पागल की तरह बक रहा हूँ । कुछ मतलब भी है मेरी इन बातों का ?

डिक्रूज : *है। वह मतलब शायद ये लोग न समझते हों। मैं ईसाई हूँ। हमारे ईसा ने भी यही कहा था। उस समय वह किसी की भी समझ में न आया था। आज भी उसे कोई नहीं समझता है। ईसा का नाम लेकर एक दूसरे के गले काटे जा रहे हैं। ईसाई ही ईसाइयों की जान के भूखे हो रहे हैं। बेचारा ईसा क्या कहता होगा यह देखकर ?*

शान्ताराम : (पुकारता है।) रूपा, इधर आ। रूपा-रूपा……

रूपा : *क्या है काका ?*

शान्ताराम : (डाँटकर) *भीतर जा।*

[रूपा झट से अपने हाथ में रखी साईक्लोस्टाईल की कलम को देखती है, चौंकती है और भीतर भाग जाती है।]

डिक्रूज : *मैं पराया नहीं हूँ काका। मुझे सब मालूम है*—(धीरे से) *मैं हूँ इसीलिए—*

शान्ताराम : *हम सुरक्षित हैं…है न ? तुम प्रभु ईसा के सच्चे भक्त हो, बेटा। इसी तरह हमें बचाते रहना। अभी और बहुत कुछ कहना है मुझे। जितना कहना चाहता हूँ उतना कह देने के बाद मैं मरने के लिए तैयार हूँ…तब तक सँभाल लेना। वह मैं जानता था इसीलिए—खैर छोड़ो भी।*

डिक्रूज : *मैं बाहर हूँ तब तक! कौन जाने मैं भी कब तक बाहर रहूँगा। किसी पर भी विश्वास नहीं है इन जापानियों का। जाने स्वयं उन पर भी उनका विश्वास है या नहीं ? ऐसी संशयालु जाति इस दुनिया में मैंने कहीं भी नहीं देखी!*

शान्ताराम : *रूपा, इधर आ।*

[रूपा दौड़कर आती है और शान्ताराम के चरण पकड़ लेती है।]

शान्ताराम : *उठ बेटा, उठ। कोई चिन्ता न कर। यही सँभाल रहा है हम लोगों को……*

[रूपा उठकर दरवाजा बंद करने जाती है।]

डिक्रूज : *पीछे लौट आओ रूपा। द्वार बंद मत करो। बंद द्वार से शक होता है। लौट आओ।*

शान्ताराम : *समझ गयी तू? इधर आ। आँखें पोंछ। अरी, ऐसा तो होता ही रहेगा। गलतियाँ किससे नहीं होतीं? अपने जीवन में हजारों भूलें की हैं मैंने। आँखें पोंछ। क्या विवाह करने गये हैं वे दोनों?…पुरोहित बनकर नहीं…दूल्हा-दुलहिन बनकर…अब तू कब जाएगी सदू को लेकर?*

रूपा : *कब जाऊँगी, यह आप जानते हैं।* (विचित्र रूप से हँसकर) *अच्छा, विवाह करने गये हैं वे दोनो? कैसे सूझता है इन्हें विवाह का—कहाँ गये सदानंद बाबू? शायद आफिस गये होंगे?* (डिक्रूज से) *तुम नहीं गये आफिस?*

डिक्रूज : *आफिस से ही तो आ रहा हूँ…*(धीरे से) *तुम्हें सावधान करने। अभी तक सब ठीक रहा…पर अब सौ आँखें लग गयी हैं इस तरफ…*(चौंकता है।) *कितना बजा?*

[डिक्रूज एकदम दौड़कर बाहर जाता है। शान्ताराम और रूपा द्वार की ओर ताकते रहते हैं। डिक्रूज घबराया हुआ पुनः लौट आता है।]

डिक्रूज : *वही था वह! इसमें कोई शक ही नहीं। कब से घात में था कौन जाने! कहीं कुछ सुन तो न लिया हो उसने? और अगर सुन भी लिया हो, तो वह समझेगा ही नहीं। बड़े भयंकर हैं ये नकटे! रूपा, होशियार रहना। कोई नासमझी न कर बैठना। चार दिन के लिए सारा काम बंद कर देना। फौज में सभी के मन खट्टे*

हो गये हैं इसमें शक ही नहीं। उसी के कारण क्षुब्ध हो उठे हैं ये सारे जापानी। क्या प्रसंग उपस्थित हो जाय इसका कोई ठिकाना नहीं!

रूपा : कौनसा प्रसंग आयगा? बहुत हुआ तो हमें नाना प्रकार की यंत्रणायें देकर मार डालेंगे। मन खट्टे तो हो गये हैं न? बस, बहुत हो गया!

शान्ताराम : तू बड़ी अल्प-संतोषिणी है रूपा। पर मुझे अभी संतोष नहीं है। उनकी जड़ ही खोद कर अलग कर देनी होगी। कहते हैं कि वे रोज आगे बढ़ रहे हैं। अब तो मेरी मातृभूमि में ही प्रवेश किया है उन्होंने। इसी से तो मेरे सारे बदन में जैसे आग-सी लग गयी है। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ? कौन है मेरी मदद करने वाला? अगर लड़ूँ तो अकेला कहाँ तक लड़ूँ? रण-भूमि की लड़ाई हो तो आमने-सामने लड़कर दो हाथ भी दिखाये जा सकते हैं—परन्तु मन खट्टे कर देना बड़ा कठिन है, प्राण लेने से भी कठिन···

रूपा : कठिन काम ही करना चाहिए। अभी जब डिक्रूज ने कहा तो मुझे बड़ा उत्साह मालूम हुआ। कुछ-न-कुछ तो हो रहा है—रत्ती-भर ही क्यों न हो···**पर हो रहा है**! इसी राई का कल पर्वत हो जाएगा······

शान्ताराम : कौन कह सकता है? कहीं इस राई को ही पीस डाला, तो तू क्या करेगी? (डिक्रूज से) कहाँ तक शक हुआ है उसे तुम पर?

डिक्रूज : उसे शक नहीं हुआ है अभी तक। मेरा ही अनुमान था वह। मैं रोज ही जो आता हूँ न यहाँ। सुनता हूँ न? मैं न हिन्दू हूँ, न एंग्लो-अमेरिकन हूँ और न जापानी ही हूँ। मैं हूँ पोर्तगीज़।

मेरा देश किसी से भी नहीं लड़ रहा है···किसी के साथ लड़ना भी नहीं चाहता···मैं एक तटस्थ प्रजाजन हूँ इसीलिए मुझे आपके प्रति सहानुभूति है।

सावित्री : (प्रवेश करके) अमला कहाँ गयी ?

शान्ताराम : विवाह के लिए गयी है !

सावित्री : किसके विवाह के लिए ?

शान्ताराम : तारासिंह के······

सावित्री : तारासिंह का विवाह ? किसके साथ ?

शान्ताराम : अमला के साथ।

सावित्री : (रूपा से) क्या यह सच है, रूपा ?

रूपा : काका से ही मुझे मालूम हुआ है।

सावित्री : क्या उन लोगों ने तुझसे कुछ नहीं कहा ?

रूपा : मेरा क्या सम्बन्ध ?

सावित्री : परन्तु मुझसे क्यों नहीं कहा ? जाते समय कम-से-कम मेरा आशीर्वाद तो ले लेना था !

शान्ताराम : क्या आशीर्वाद देनेवाली थीं तुम ?

सावित्री : उसे अब बताने से फायदा ?

शान्ताराम : तो अभी दे दो न यहीं से आशीर्वाद। अब तक विवाह हो भी गया होगा। उनकी विवाह···विधि कोई अधिक लम्बी-चौड़ी नहीं होती। हम लोगों-जैसा आडम्बर नहीं रहता उनमें। (रुककर) दो न आशीर्वाद !

सावित्री : बहुत पहले ही दे चुकी हूँ आशीर्वाद। जब दोनों का विवाह निश्चित हुआ था तभी मैं आशीर्वाद दे चुकी थी।

डिक्रूज : आप जानती हैं ··तारासिंह को लड़ाई पर जाने का हुक्म हुआ है।

सावित्री : लड़ाई पर जाने का ? पर वह तो लड़ाई पर नहीं जा रहा था न ?

डिक्रूज : यहाँ कौन किसकी इच्छा की परवाह करता है ? हुक्म मिला, कि बस जाना चाहिए। हर घर से लोगों को खींच-खींचकर बाहर निकाल रहे हैं। खुशी की जबरदस्ती है यह · चाहो तो जबरदस्ती की खुशी कह दो। क्योंकि हिन्दुस्तान की आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं न !

शान्ताराम : उनसे कह दो कि हिन्दुस्तानी इतने मूर्ख नहीं है। इस लड़ाई पर उनका कोई विश्वास नहीं। वे **मरने** के लिए तैयार हैं··· दूसरों को **मारने** के लिए नहीं। उन्हें **अकारण** किसी की हत्या नहीं करनी है। हमें इन जापानियों की तरह अहिंसावादी बुद्ध का नाम लेकर संहार नहीं करना है। अगर हमें संहार ही करना पड़े, तो हम सिर्फ संहार का संहार करेंगे। यहाँ यह बात किसी के दिमाग में ही नहीं आती कि नाश का नाश करने के लिए हमने कमर कसी है। ये सब लोग अंधे हैं···बहरे हैं। एक गलत आदमी के पीछे पागल हो गये हैं। हिन्दुस्तानियों में भी सूर्याजी पिसाल हैं···बालाजी पंत नातू हैं ! ऐसे लोगों की सुन रहे हैं ये ! हिन्दुस्तान की सीढ़ी पर ही जब इन्हें ठोकर लगेगी, तब अक्ल ठिकाने आयगी इन लोगों की !

सावित्री : अमला क्या सचमुच विवाह करने गयी है ?

शान्ताराम : तो क्या मैंने अभी हवा से कहा था ? देख लिया ?— यह हाल है ! हर इन्सान सिर्फ अपने स्वार्थ को देखता है ··अपने घर को, अपने परिवार को। अपने देश की चिन्ता में इधर तो मेरे

प्राण सूखे जा रहे हैं और तुम पूछती हो कि क्या सचमुच अमला विवाह के लिए गयी है ? रूपा, देख लो, स्थिति यह है। यह है हम लोगों का स्वभाव (सावित्री एकदम सिसकने लगती है।) तुमसे नहीं कह रहा हूँ मैं। चालीस करोड़ लोगों में तुम अकेली किस खेत की मूली हो ! सिंधु से यदि एक बूंद निकल जाय तो सिंधु सूख नहीं जाता···अमला अब घर से चली जायगी, इसी का तुम्हें दुःख हो रहा है ? क्यों ? तो अब रूपा आ जायगी न यहाँ ·· ···

डिक्रूज : अच्छा, तो अब मैं चलूँ ? यहाँ बहुत देर बैठना भी ठीक नहीं। कुछ समय पहले ही वह जापानी टोह ले गया है···शायद अफसर से जाकर चुगली कर दे। नमस्ते। (जल्दी-जल्दी चल देता है।—)

[रूपा डिक्रूज के पीछे-पीछे जाकर दरवाजे से झाँकती है···बाद में दरवाजे के बाहर जाकर देखती है और फिर भीतर आ जाती है···उसके भीतर आते ही सावित्री उसे अपने निकट खींच लेती है।]

सावित्री : क्या सचमुच तू यहाँ आ रही है ?

रूपा : आऊँ ?

सावित्री : तू भी शायद सदू से विवाह कर लेगी ?

रूपा : विवाह क्यों ? किसी की पत्नी बनकर आने से किसी की बेटी बनकर आना क्या अधिक अच्छा नहीं है ? अमला अब मेरे भाई के पास चली जायगी···अब वहाँ मेरे कारण उन्हें अड़चन क्यों हो ? वह भी आखिर कितने दिन रहेगा ?···अमला को भी फिर आना ही पड़ेगा यहाँ······

शान्ताराम : और सदानन्द को जाना पड़ेगा लड़ाई पर ! वहाँ तोपों के लिए कुछ खाद्य चाहिए न ?

सावित्री : यह क्या कह रहे हैं आप ?

शान्ताराम : मैं सत्य कह रहा हूँ । तोपों को वहाँ खाद्य की जरूरत है । वहाँ की तोपें बहुत भूखी हैं । मुँह खोलकर सरहद पर बैठी हुई हैं । उनके मुँह में डालने के लिए हिन्दुस्तानियों की जरूरत है ! तभी तो जापानी जीतेंगे ! हाँ ! कहते हैं स्वतन्त्रता देंगे ! देख ली है हमने उनकी स्वतन्त्रता की पत्तल ! चाँवल का एक कण भी न लगेगा जीभ को ! मैं यह सब ब्रह्मदेश में देख चुका हूँ ! स्वतन्त्रता देते हैं ! ··दूसरों के देने से कहीं स्वतन्त्रता मिली है ?

रूपा : (शान्ताराम के पास जाकर बैठती है ।) क्यों इतना कष्ट दे रहे हैं आप अपने मस्तिष्क को ? क्या लाभ होगा इससे ? हम लोग कुछ कर रहे हैं···उसका कुछ असर भी हो रहा है···मुट्ठी-भर मिट्टी से सेतु नहीं बँध सकता, यह सच है—पर एक-एक मुट्ठी मिट्टी हम डाल ही रहे हैं न ? कम-से-कम इतना ही सतोष मिल रहा है हमें ! ···

शान्ताराम : तू जा अब अपने काम पर ।

रूपा : जाती हूँ—पर एक बचन दीजिए मुझे···अपने मस्तिष्क को कष्ट न देंगे आप । कुछ भी न बोलिए··माँ को कष्ट होते हैं न ! माँ को यदि कष्ट हुए, तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा, समझे ?

शान्ताराम : परन्तु यदि न बोलूँ, तो मुझे कष्ट होते हैं न !

रूपा : बोलिए भी नहीं और न अपने-आपको कष्ट दीजिए, समझे ? स्वीकार है ?

शान्ताराम : (उसकी चिबुक पकड़कर) स्वीकार है···स्वीकार है । अब जा । सब लोग प्रतीक्षा कर रहे होंगे !

[रूपा ओठों पर अँगुली रखकर शान्ताराम को डाँटती है और भीतर जाती है ।]

सावित्री : *क्या कर रहे हो यह ?*

शान्ताराम : *उसने क्या कहा ? सुना नहीं ? बोलना बिल्कुल बंद··· कष्ट नहीं करना है···*(हँसता है ।) *समझीं ?*

सावित्री : (व्याकुल होकर) *कोई भी नहीं है घर में । यह भी चली जायगी अब । जब ये कोई नहीं होतीं, तो घर जैसे खाने को दौड़ता है मुझे ।*

शान्ताराम : *और मैं जो हूँ ?*

सावित्री : *ये नहीं होतीं तो भय लगता है मुझे !*

शान्ताराम : *मतलब ? मेरी अपेक्षा क्या ये लड़कियाँ बहादुर मालूम होती हैं तुम्हें ?······*

[रूपा आती है । शान्ताराम के चरण छूकर प्रणाम करती है और 'जाती हूँ' कहकर कूदती-फाँदती चल देती है । शान्ताराम सुन्न होकर दरवाजे की ओर देखता रहता है । सावित्री घबड़ाकर उसके मुख की ओर देखती है ।]

शान्ताराम : *आज क्यों प्रणाम किया इसने ? आज ही इसे यह क्या सूझी ? इससे क्या समझूँ ? कहीं यह किसी अमङ्गल की पूर्व सूचना तो नहीं ?*

सावित्री : *यह क्या हो गया है आपको ? क्या शुभ बात कभी आपके मन में ही नहीं आती ?*

शान्ताराम : *क्यों आना चाहिए ? सब ओर अनर्थ ही तो मचा हुआ है । चारों तरफ से संकट आ रहे हैं । फिर यही शुभ क्यों हो ?*

सावित्री : *अमला क्यों नहीं आयी अभी तक ?*

शान्ताराम : *उसे गये अभी समय ही कितना हुआ है । कहने के लिए कुछ धार्मिक विधियाँ तो करनी ही होंगी न ? अब दोनों आते ही होंगे ।*

सावित्री : *भीतर चूल्हे पर रखी दाल जल रही होगी...परन्तु हिम्मत नहीं होती भीतर जाने की।*

शान्ताराम : *वहाँ कौन बैठा है जो तुम्हें खा जायगा।*

सावित्री : *और ऊपर से आप ऐसी बातें करते हैं फिर कोई क्यों नहीं घबरा जायगा? कहाँ गयी है रूपा?*

शान्ताराम : *गयी होगी अपने घर।*

सावित्री : *नहीं—आप कुछ छिपा रहे हैं मुझसे? घंटों आप कुछ लिखते रहते हैं...और वह भी लिखती रहती है!.. ...*

शान्ताराम : *मैं उसे संस्कृत पढ़ा रहा हूँ। संस्कृत के नये पाठ देता हूँ वह परीक्षा के परचे लिखती रहती है!*

सावित्री : *आप तो कुछ भी कह देते हैं। जब आप मुझे सच बात नहीं बताना चाहते, तब ऐसी ही कोई गप्प मार देते हैं।...पर क्या यह अच्छी बात है?*

शान्ताराम : *अब किस तरह समाधान करूँ तुम्हारा? कोल्हापुर की याद है न? मैं रंगून जा रहा था। तुमने मेरे साथ जाने का हठ पकड़ लिया था। पहली बार का ही मौका था इसलिए माँ तुम्हें मेरे साथ भेजने को तैयार न थीं...*(गहरी साँस लेकर) *और जब कोल्हापुर लौटा तो माताजी का श्राद्ध करने। फिर तुम्हें अपने साथ रंगून लाना ही पड़ा। कितने आनन्द में थीं तुम उस समय! याद है न? उस समय तुमने कोई प्रश्न न पूछे थे। उसी तरह अब हम रंगून से यहाँ आये हैं। उस समय सदा के लिए माताजी चल बसीं और घर छूटा। और इस बार घर नष्ट हुआ और उसके साथ बेटी भी गयी......*

सावित्री : *···कितनी बार कहा आपसे कि गड़े मुर्दे न उखाड़ा करें !*

शान्ताराम : *दो पीढ़ियों के बीच की कड़ी हूँ मैं···मैं ही अब बचा हूँ। नये धागे जोड़ने की फ़िक्र में हूँ···नयी पीढ़ी के निर्माण का प्रयत्न कर रहा हूँ। उधर मेरी मातृभूमि मुझे पुकार रही है···उसकी पुकार कानों में पड़ रही है, पर जवाब नहीं दे सकता··· मेरी आवाज ही नहीं पहुँचती है मेरी मातृभूमि तक !···*(हँसने का प्रयत्न करता हुआ) *अमला अब आयगी तो उसे क्या आशीर्वाद दोगी ? "सौभाग्यवती भव" कहनेवाली हो या "अष्ट-पुत्रा सौभाग्यवती भव," कहनेवाली हो ?*

सावित्री : *क्या कहूँ ?*

शान्ताराम : *क्या यह भी मुझे ही बताना होगा ?*

सावित्री : *क्यों, क्या नहीं बताना चाहिए ? मैं नासमझ जो हूँ न ?*

शान्ताराम : *यह सब समझती हो तुम। ये तो मामूली पारिवारिक बातें हैं !*

सावित्री : *बताइए क्या आशीर्वाद दूँ ?*

[अमला दौड़ती हुई जाती हैं और सावित्री के गले में बाहें डाल देती है।]

सावित्री : *चिरंजीविनी हो बेटी···मातृभूमि के लिए चिरंजीविनी हो···अपने नाम की तरह निर्मलबनी रहना···थोड़ा-सा भी कलंक न लगने देना···वह कहाँ है ?*

अमला : *आते हैं अभी······*

शान्ताराम : *हो गयी तेरे मन की ?*

अमला : *और उनके मन की ?*

शान्ताराम : *अच्छा ? अब अपने मन की अपेक्षा उसके मन की तुम्हे अधिक परवाह होने लगी, क्यों ?*

सावित्री : *ऐसा तो होगा ही। यदि ऐसा न हो, तभी आश्चर्य है। यदि यह विवाह हिन्दुस्तान में हुआ होता तो ....*

शान्ताराम : *कल यही हिन्दुस्तान न हो जायगा, यह कैसे कह सकती हो ? शोनान का फिर सिगापुर न हो जायगा, यह कैसे कह सकती हो ?*

[सदानन्द घबड़ाया हुआ भीतर आता है।]

सदानन्द : *रूपा कहाँ है ?*

शान्ताराम : (झट से उठकर) *अभी ही बाहर गयी है। क्यों ?*

सदानंद : *नही...कुछ नही...शायद वह समाचार झूठ होगा। किसी ने झूठ ही कह दिया होगा मुझसे......*

शान्ताराम : *क्या कहा ?*

[सदानन्द चुप रहता है]

शान्ताराम और सावित्री : *किसने क्या कहा ?*

[तारासिंह गम्भीर मुद्रा से गिन-गिनकर पैर रखता हुआ भीतर आता है। सब लोग उसकी ओर देखते रहते हैं। वह कुछ नहीं बोलता। अमला दौड़कर उसके पास जाती है और उसका हाथ पकड़ लेती है।]

शान्ताराम : (गहरी आवाज में) *क्या रूपा को पकड़ लिया ?*

[तारासिंह बिलकुल यन्त्रवत गर्दन से "हाँ" कहने का इशारा करता है।]

अमला : *रूपा को पकड़ लिया ?*

सावित्री : *क्या कहते हो? रूपा को पकड़ लिया? मेरी रूपा··· रूपा··· मेरी रूपा···* (मूर्छित होकर गिर पड़ती है।)

शान्ताराम : *दौड़ो, दौड़ो··· कोई उसे होश में लाओ!* (अमला दौड़कर उसे उठा लेती है। सदानन्द भीतर से पानी ले आता है।)

तारासिंह : *एक आयी··· एक गयी··· यूँ ही नहीं···* (शान्ताराम के पास आकर उसकी आँखों में आँखें डालकर) *क्यों पकड़ा मेरी बहिन को?··· बोलिए न?··· क्यों पकड़ा मेरी बहिन को?*

शान्ताराम : *जाकर पूछो अपने नाकानिशी से······*

तारासिंह : *उससे पूछ लिया है··· तभी तो आप से पूछ रहा हूँ··· क्यों पकड़ा मेरी बहिन को?* (शान्ताराम घबड़ाकर नीचे बैठ जाता है।)

शान्ताराम : (दोनों हाथों से सिर पकड़ कर) *हे भारत माता! इन जापानियो ने क्यों पकड़ा इसकी बहिन को?*

(परदा गिरता है।)

तीसरा अंक

[स्थान—पहले अंक की तरह ही परदा ऊपर उठने से पहले ही बाहर हवाई जहाजों की 'घर्रघर्र' आवाज सुनायी पड़ती है। इसके साथ ही दूर कहीं से जॉज बैंड बजने की आवाज भी आ रही है। परदे के उठते ही क्षण-भर के लिए रंग-मञ्च पर कोई नहीं रहता। फिर सावित्री दौड़ती हुई विंग से बाहर आती है। इधर-उधर देखती है। 'अमला ! अमला !" कहकर जोर से चिल्लाकर पुकारती है और पुकार का कोई उत्तर न मिलने से "कोई नहीं ! कोई नहीं !" कहती हुई सामने के कोच पर बैठकर आँसू बहाने लगती है। थोड़ी देर के बाद डिक्रूज आता है।]

डिक्रूज : *कोई नहीं ?*···(देखकर) *आप तो हैं ? शायद सभी बाहर चल दिये हैं ?*

सावित्री : *कोई नहीं है ! नाम लेने को भी कोई नहीं है। सब जानते हैं कि जब मैं यह घर्राटा सुनती हूँ तो मेरा कलेजा काँप उठता है···फिर भी यहाँ कोई नहीं है···जाओ, जी मैं आये वहाँ जाओ। अब इस घर्राटे की मुझे आदत पड़ गयी है। जरा भी नहीं घबड़ाती मैं अब उससे। देखो, क्या मैं घबड़ायी-सी दिख रही हूँ ?*

डिक्रूज : *कुछ भी हो···फिर भी किसी-न-किसी का यहाँ रहना जरूरी था। आजकल चाहे जिस घर में घुसकर तलाशी ली जा रही है···तलाशी लेते वक्त सारे घर को बरबाद कर रहे हैं यह सब जानते हुए भी यहाँ से सभी क्यों चले गये ?*

सावित्री : *मैंने ही उनसे कह दिया था कि अब मुझे भय नहीं लगता। रूपा का पता लगाने गये हैं वे लोग ?* (गद्गद् होकर) *मैं*

ही अभागिनी हूँ ! जिसको बेटी कहूँगी उसका यही हाल होगा ! (दयनीयता से देखती हुई) क्यों जी, वापस आ जायगी वह ?

डिक्रूज : (आँखों के कोनों में आये आँसू की बूँदों को अँगूठे से पोंछता हुआ) आयगी, यह कह देता···शायद आ भी जाय, परन्तु यदि न आवे तो अपने मन को पक्का करना होगा आपको । शैतान की औलाद हैं ये जापानी·· ऐसे मामले में वे यह नहीं देखते कि गुनहगार स्त्री है, पुरुष है, जवान है या बूढ़ा है । गरीब बेचारी लड़की !···उन यन्त्रणाओं को कैसे सहन करेगी, भगवान जाने !

सावित्री : तुमने अभी पहचाना नहीं है उसे । चीरकर कोई दो टुकड़े भी कर डाले, पर क्या मजाल, कि उसके मुँह से एक शब्द भी निकले ।

डिक्रूज : मैं जानता हूँ । आखिर हाड़-मांस का शरीर ही तो है । घोर यन्त्रणाएँ भी आखिर कोई कहाँ तक सहन करेगा ?

सावित्री : यंत्रणाएँ सहन करने के लिए ही हम औरतों का जन्म हुआ है । पुरुषों जैसी हम कमजोर नहीं । तुम लोग अपने आप पर से हमें तौलते हो···परन्तु संकट के समय कौन तुम्हारे काम पड़ता है ? कौन तुम्हें हिम्मत बँधाता है ? कौन तुम्हें सँभालता है ?

डिक्रूज : आप सच कहती हैं । हम खुद हिम्मत हार जाते हैं, एक दूसरे की हिम्मत तोड़ देते हैं...तब कोई माँ, बहिन या पत्नी ही संभालती है हमें ! बिना अच्छी तरह सोचे यह बात एक दम ध्यान में नहीं आती । हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि इस विषय में हम कभी सोचते ही नहीं ।

सावित्री : मानते हो न ? फिर क्यों शक करते हो उस पर ? मुझे ही देख लो—इस समय मेरी कैसी बुरी हालत है जरा-सी भी

आवाज मुझसे सहन नहीं होती ··पर चाहो तो। ले लो मेरी परीक्षा! दो न, कितनी यन्त्रणाएँ देना चाहते हो···दो न मुझे···यंत्रणाएँ देकर देखो न मुझे···दो-दो······

डिक्रूज : छिः! छिः! यह क्या कह रही हैं आप?

सावित्री : देखो, घबड़ा गये न? तुम्हें कोई कल्पना ही नहीं है नारी की शक्ति की, इसलिए घबड़ा गये···कहाँ ले गये हैं उसे?

डिक्रूज : यही मैं नहीं जानता! कल से लगातार खोज कर रहा हूँ। कोई पता नहीं लग रहा है। जो बिलकुल घनिष्ठ मित्र प्रतीत होते थे उनसे पूछा···उन्हीं का काम है यह, यह मैं जानता हूँ··· परन्तु वे भी कानों पर हाथ रखने लगे। बहुत बुरे हैं ये पीले सांप। दिखने को बड़े सुन्दर दिखते हैं, पर काटने में आगा-पीछा नहीं करते···अपने पराये में कुछ भी भेद-भाव नहीं करते। पिछली बार कम्यूनिस्टों ने सिर उठाया था···जापान के शासन पर करीब-करीब अधिकार ही जमा लिया था उन्होंने···परन्तु सर्वनाश कर दिया उन लोगों का! अभी तक बचे है उनके बीज और वे भीतर ही भीतर कहीं जम रहे हैं। कभी-न-कभी उनका भी वक्त आयेगा। जरा यह लड़ाई तो समाप्त होने दीजिए······

सावित्री : कब समाप्त होगी यह लड़ाई?

डिक्रूज : अत्याचारी शासन का सर्वनाश हुए बिना यह लड़ाई समाप्त नहीं होगी। भारत में ही अंत होगा इस लड़ाई का। वह समय निकट आ गया है···दुर्जनों के पाप के घड़े भर चुके हैं ··थोड़ा समय और बचा है···

[सदानन्द आता है। क्षण-भर के लिए द्वार में रुककर डिक्रूज की ओर देखता है···और फिर तीर की तरह उस पर एकदम टूट पड़ता है।]

सदानन्द : *क्या तूने की है यह चुगली ?*

डिक्रूज : *सदानन्द !*

सावित्री : *सदू !*

सदानन्द : *हाँ-हाँ ! इसी ने की है यह चुगली। यह हैं न उसी मुहकमे में। अफसरों का कृपा-पात्र जो बनना है न इसे ? कोई शक ही नहीं। इसी ने की है चुगली। इसे पता लग गया था—काका बातें करते थे—यह भी खूब जी खोलकर बातें करता था, इसी ने की है यह चुगली !*

डिक्रूज : (गंभीरता से) *पर क्या काका कहते हैं ऐसा ?*

सदानन्द : (आवाज कम करके) *काका का सभी पर विश्वास है··· और तुम पर तो विशेष रूप से है ··पर मेरा विश्वास है······*

सावित्री : *नहीं सदू, मेरा मन कहता है · अपने मन पर विश्वास है मुझे-कभी भी झूठ नहीं कहता मेरा मन। मेरा वही मन मुझसे कहता है कि किसी ने भी किसी की चुगली नहीं की है। आप-ही-हो गया है यह···वे लोग चिढ़ेंगे क्यों नहीं ? हम लोगों ने काम ही ऐसा किया है···तुमने यह सोचा भी कैसे कि परायों पर वे विश्वास रखेंगे ? वे स्वयं अपनी तरफ से सब देख रहे हैं। तुम्हारे काका जब यहाँ बातें कर रहे थे, तब कोई एक द्वार के पास खड़ा टोह ले रहा था······*

सदानन्द : *यह सब मुझसे काका ने कह दिया है······*

डिक्रूज : *तो भी तुम मुझ पर शक करते हो ?*

सदानन्द : *तारासींग भी तुम पर शक करता है।*

डिक्रूज : *अच्छा ? इसीलिए तुम भी मुझ पर शक करते हो ?··· हाँ भाई, जो कहोगे सुन लेना होगा। तुम्हारी शंका का समाधान कर*

सकूँ ऐसा कोई सबूत कहाँ है मेरे पास ? काका तो ऐसा नहीं सोचते न ? (सदानन्द चुप रहता है ।) बोलो न ? काका तो मुझ पर संदेह नहीं करते न ? अमला क्या कहती है ?……

सदानंद : वह क्या जानें ?

डिक्रूज : मतलब यह कि वह मुझ पर शक नहीं करती—यही न ? (सदानन्द चुप ही रहता है ।) मत बोलो । परायेपन के कृत्रिम भेद उत्पन्न हो गये हैं । प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति को संदेह की दृष्टि से देखता है । कोई किसी के हृदय की परख नहीं करता, इसीलिए ये संदेह पैदा हो रहे हैं…काका कहाँ हैं ?

सदानन्द : मैं नहीं जानता ।

डिक्रूज : (सावित्री के चरण छूकर) मैं जाता हूँ । काका से मेरा नमस्कार कहिए । मुझे विश्वास नहीं कि अब फिर भेंट हो……

सदानन्द : क्या कहीं भागकर जा रहे हो ?

डिक्रूज : माफ करो ! मुझे कड़े शब्द कहने के लिए बाध्य न करो… (पुनः सावित्री के चरण को छूकर) मुझे यही आशीर्वाद दीजिए कि मुझे आपकी शक्ति प्राप्त हो । बहुत जरूरत है मुझे इस आशीर्वाद की……

सावित्री : जाओ डिक्रूज, भगवान तुम्हारा भला करे !

डिक्रूज : जब से लड़ाई शुरू हुई है भगवान् पर से मेरा विश्वास उठ गया है !…बहुत आभारी हूँ । अब बिदा होता हूँ । काका से कह दीजिए…(एकदम सिसकी आती है जिसे रोकता हुआ वह एकदम चल देता है ।)

सदानन्द : इसी का काम है वह ।

सावित्री : नहीं सदू, निर्मल मन पर इस तरह संदेह न करना

चाहिए। इससे हमें पाप लगता है। संकट से मन पापी हो जाता है…पर उन पापों को धो डालना चाहिए। निर्मल मन से देखना चाहिए सबकी ओर! दोषी मन को दोष देते समय भी विचार करना चाहिए। परन्तु यहाँ तो दोष भी सिद्ध नहीं हुआ है।… क्यों करेगा वह चुगली?

सदानन्द : अपने अफसर का कृपा-पात्र बनने के लिए।

सावित्री : अपने अफसर का कृपा-पात्र बनने के लिए क्या तुम कर देते ऐसी चुगली?…(सदानन्द चुप रहता है।) बड़े ईमानदार नौकर हो तुम। बड़ी ईमानदारी से नौकरी कर रहे हो। पहले तुम्हें कुछ भी मालूम न था। तुम्हारे काका ने इस विषय में तुम्हें जरा भी पता न चलने दिया था! अब तुम्हें मालूम हो गया है। यदि और किसी की बात होती तो क्या तुम कर देते चुगली? (क्षण-भर रुककर) नहीं न? फिर उस पर ही क्यों शक करते हो?…तुम्हारा ही मन पापी है। तुम "नहीं" कहने का साहस नहीं कर पाते। मेरे सामने तुमसे झूठ नहीं बोला जाता। तुम्हें लगता है कि तुम चुगली कर देते…इसीलिए तुम्हें लगता है कि इसने चुगली की! है न?

सदानन्द : क्या सचमुच आपका यह ख्याल है मौसी?

सावित्री : तुम क्या सोचते हो?

सदानन्द : मैं बड़े असमंजस में पड़ गया हूँ…घबड़ा गया हूँ… मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा है। मेरी रूपा उन शैतानों के हाथ पड़ गयी है…वे उसका क्या करेंगे, मुझे इसकी पूरी कल्पना है……

सावित्री : इससे पहले कितने ही आदमी उनके हाथ पड़े थे। उस समय तुम नहीं घबड़ाये। उस समय असमंजस में नहीं पड़े। क्योंकि उनके प्रति तुम्हारे हृदय में आत्मीयता नहीं थी न? अब

खुद तुम्हें आँच लगी है इसलिए घबरा गये हो। पहले से ही सबकी ओर क्यों नहीं देखा इसी दृष्टि से। यदि सबके प्रति यही आत्मीयता होती तममें, तो इस प्रकार परचों का अनुवाद करते न बैठे रहते। ऐसे परचे खुद ही निकालते ··भीतर से सुरंग लगाते। नौकरी की वृत्ति ने नाश कर डाला है तुम्हारा। चार दमड़ी के लिए तुम लोग बेच देते हो अपने आपको···इसीलिए सज्जनों पर तुम्हें संदेह होता है।

सदानन्द : आज आपको क्या हो गया है मौसी? ठीक काका की वाणी में बोल रही हैं आप!

सावित्री : आखिर एक ही तो हैं हम दोनों। कमजोर भले ही हो गयी होऊँ, पर उनकी शक्ति हूँ मैं। उनकी दृष्टि से देखती हूँ मैं दुनिया को, और इसीलिए मेरे अनुमान गलत नहीं निकलते। जाओ, डिक्रूज से क्षमा माँगो। उसके चरण पकड़ो। तुमसे घोर अपराध हुआ है। कितना महान पुरुष है वह, इसकी तुम्हें कल्पना भी नहीं। उसी ने सँभाला था आज तक सबको। जाने दुनिया यह कब जानेगी कि ऐसे भी लोग होते हैं सरकारी नौकरी में। उपकार भी नहीं माने जा सकते ऐसे लोगों के। हमारा दुर्भाग्य है यह! जाओ···जल्दी जाओ जल्दी मिलो उससे अन्यथा भेंट भी न होगी। वह संकट में है। तुम क्रोध से तिलमिला रहे थे इसीलिए तुम्हें पता नहीं चला! आजकल लोग शब्दों की भी कंजूसी करने लगे हैं···इसलिए पता न चला। तुम्हें···जाओ-जाओ-माफी माँगो उससे।

[सदानन्द चुपचाप बाहर चला जाता है। यह मालूम होते ही कि वह बाहर चला गया, सावित्री का एकदम दिल भर आता है।]

सावित्री : (गद्गद् कंठ से) मेरे बेटे! मेरे बच्चे! भूलते हैं!

(अमला एकदम दौड़कर आती है ।) आ गयी ?

अमला : (घबड़ाकर) क्या हो गया मौसी ? दादा इस तरह एकाएक क्यों चले गये ? पूछा, तो कुछ भी नहीं बोले ।

सावित्री : क्या तू ने मनू डिक्रूज को कहीं देखा है ?

अमला : नहीं तो ।

सावित्री : तारासींग कहाँ है ?

अमला : उनका भी कोई पता नहीं ।

सावित्री : और तेरे काका ?

अमला : आते ही हैं थोड़ी देर में। दादा को गाँठ लिया है उन्होंने··· रोक लिया है वहीं · बातें कर रहे होंगे उनसे ! मेरी ओर कुछ अजीब-सी दृष्टि से ही देखा दादा ने··· ···

सावित्री : गरीब बेचारे मेरे बच्चे ! दूर देश में आ जाने से स्वप्नों से वंचित हो गये है···अब प्राणों से भी वंचित हो जायेंगे । अमू, बेटी, अब यह सारी जिम्मेवारी हम पर आ जाती है ! हमें अब अपने दिल पक्के करना चाहिए···कठोर बनना चाहिए । निर्दयी हो जाना चाहिए···संकटों से डगमगाना न चाहिए । अभी हम पर जाने और कितने सङ्कट आयँगे । हम विदेशी के मुल्क में हैं । परायों को अपना कहने का पाप कर रहे हैं हम । इस पाप के फल को भोगना ही होगा । इसलिए हमें मन को कड़ा करना चाहिए ।

[शान्ताराम आता है । उसका चेहरा प्रसन्न है । उसे देखते ही सावित्री चौंककर उठकर उसके पास जाती है, क्षण-भर के लिए उसकी ओर देखती है और कहती है···]

सावित्री : रूपा शायद मिल गयी ? घर आ गयी अपने ?

शान्ताराम : घर ही में तो है वह ।

सावित्री : *मतलब ?*

शान्ताराम : *वही अब उसका घर है। उस घर का पता न तुम्हें लगेगा और न मुझे…*

सावित्री : *आपको देखा तो मुझे लगा……*

शान्ताराम : *कि मैं बड़ा खुश हूँ। पर यह बात नहीं है कि खुशी में ही मनुष्य हँसता है। हँसने के कई कारण हुआ करते है। दुख जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब भी मनुष्य हँसता है… अट्टहास करता है…*

सावित्री : (घबड़ाहट से कोच पर वैठकर) *मतलब कि उसका कोई पता नहीं है ?*

शान्ताराम : *अब पता लगने की आशा भी नहीं। वह गयी · सदा के लिए चली गयी…पुराने अनुभवों से तुम कोई कल्पना न कर लेना…उधर कुछ दिनों के बाद छोड़ दिया करते थे…परन्तु इधर वैसी बात नहीं। यहाँ तो शेर की गुफा है…उसमें जानेवालों के पैरों के निशान तो दिखते हैं पर लौटनेवालों का कुछ भी पता नहीं चलता।*

सावित्री : *तो मतलब यह कि अब वह दिखेगी ही नहीं ?*

शान्ताराम : *हाँ ! तुमने सदू के खूब कान उमेठे ? अच्छा किया। कितने पापी मन होते हैं हम लोगों के। शक करने की भी तो आखिर कोई हद होती है ? डिक्रूज पर शक ?* (हँसता है।) *मैं स्वप्न में भी यह न सोचता…अच्छा किया तुमने ! रोता हुआ गया है उसकी खोज में……*

अमला : *रोता हुआ गया ! क्या हो गया था ?*

शान्ताराम : *डिक्रूज पर उसने चुगली करने का आरोप लगाया था।*

अमला : *छि ! छि !*

सावित्री : *यह सच है बेटी ! संकट में मनुष्य का मन इसी प्रकार पापी हो जाता है। इसमें उसका अपराध नहीं।*

अमला : *क्या डिक्रूज चुगलखोर ! दादा उस पर शक करें ? सङ्कटों में घिर गये तो क्या हो गया ? मुझे नहीं कभी ऐसा लगा...और कभी लगेगा भी नहीं।*

शान्ताराम : *देख लो अब ! ऐसा है। नौकरी से मनुष्य दुर्बल हो जाता है। सरकारी नौकर का मन कमजोर हो जाता है...उसे सरकारी दृष्टि से देखने की आदत पड़ जाती है और फिर धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगता है कि वह ही सरकार हो गया है। इस नये शासन को आरंभ हुए अभी एक साल भी नहीं हुआ है और देखो, इतने थोड़े समय मे ही इसकी दृष्टि भी जापानी हो गयी है...* (अमला से) *तू कैसे आ गयी यहाँ अपना घर छोड़कर ?*

अमला : *घर है कहाँ मेरा ? कौन है घर में ? मेरा घर है इसलिए क्या मैं घर गयी थी ? घर टूट जायगा, यह मुझे अच्छी तरह मालूम था...परन्तु इतनी जल्दी वह नष्ट हो जायगा ऐसा मुझे नहीं लगता था। नौकर भी भाग गये...*

शान्ताराम : *इसीलिए तू यहाँ चली आयी ?*

अमला : *हाँ, इसीलिए यहाँ आ गयी। कभी-न-कभी तो यहाँ आना ही था। बस, इतना ही हुआ कि आज ही चली आयी।*

शान्ताराम : *अब वापस फिर कब जायगी ?*

अमला : *यह मैं क्या जानूँ ? कोई बुलाने आयगा तो चली जाऊँगी।*

शान्ताराम : *बुलाने क्यों नहीं आयगा ? जरूर आयगा। अभी वह*

रूपा की खोज में घूम रहा है कहीं। परन्तु इस शासन में पता कैसे चलेगा? सुनता हूँ कि उसके बड़े-बड़े वसीले हैं यहाँ। बहुत से जापानी अफसर उसकी जान-पहचान के हैं। वह इसी भ्रम में उलझा हुआ है कि उनसे मदद मिलेगी। फिर वही भूल···ये लोग वर्तमान शासन का पुराने शासन से मिलान करते हैं। लेकिन याद रखो, उस शासन की बातें इस शासन में नहीं मिलेंगी। (अपने आप पर खुश होता हुआ हँसकर) कुल मिलाकर बड़ा मजा है। सब तरफ बड़ी गड़बड़ी मच गयी है। कागज के एक बीता-भर टुकड़े में इतनी शक्ति कि उसने सबके प्राण सुखा दिये! मेरे परचों ने सत्ताधारियों के छक्के छुड़ा दिये हैं, इसीलिए तो दुख में भी मुझे आनन्द हो रहा है! मैंने सिर्फ इसलिए लिखा कि मुझे कुछ शान्ति मिले·· कुछ संतोष मिले। लिखने के लिए मेरे हाथ मचल रहे थे, इसलिए लिखा···हृदय को खूब निचोड़कर लिखा···लिखने का क्या प्रभाव पड़ेगा, यह मैंने कभी सोचा भी न था···कोई प्रभाव पड़ेगा ऐसा लगना तो दूर ही रहा। पर बड़े अचंभे की बात यह है कि प्रभाव पड़ा। प्राचीन राष्ट्रीय वृत्तियां अभी मरी नहीं थीं। सैकड़ों वर्षों के विदेशी शासन की तहें कुछ लोगों के मन पर अभी चढ़ी नहीं थीं, इसलिए प्रभाव पड़ा। यह देखते ही कि स्वतन्त्र भारत का नाम लेकर रचे गये इस ढोंग की अब कलई खुल रही है, ये नकटे चिढ़ गये··· पागल हो उठे···शक पर चाहे जिसको पकड़ने लगे। अभी तक कितने ही बेगुनाह पिस रहे थे उनकी चक्की में। लेकिन अब उन्हें सच्चा गुनहगार मिल गया है। उन्हें लगा कि अब यह सब रुक जायगा· परन्तु रूपा को पकड़ लेने के बाद भी जब परचे निकल ही रहे हैं, तब क्या सोचते होंगे वे बताओ?

अमला : अधिक उन्मत्त हो गये होंगे।

शान्ताराम : नहीं। (सावित्री से) तुम बताओ?

सावित्री : आप तो ऐसा पूछ रहे हैं जैसे हमारी कोई क्लास ले रहे हों !

शान्ताराम : हाँ, यह क्लास ही है । मेरे बाद भी काम होते रहना चाहिए······

अमला : आपके बाद ?

शान्ताराम : हाँ, मेरे बाद भी । मैं जाऊँगा, यह निश्चित है । कब जाऊँगा यही निश्चित होना अभी बाकी है । मैं चाहे मर जाऊँ, फिर भी काम बंद न होना चाहिए, समझीं । यह काम इसी तरह जारी रखना होगा । मैंने बहुत लिखकर रख दिया है । ठीक समय पर वह तुम्हें मिलता रहेगा···काम बराबर जारी रहे !

अमला : (अपने आप से) काम जारी रहे ! कैसे जारी रखा जाय यह काम ?

शान्ताराम : आज तक जैसा हो रहा है उसी तरह !

अमला : क्या वे अधिक सचेत नहीं हो जाएँगे ?

शान्ताराम : हाँ, शायद हो भी जाएँगे । उनसे अधिक हमें सचेत रहना चाहिए । जब प्राणों पर आ बीतती है, तो उपाय आपही, आप सूझने लगते हैं । सिर्फ ध्यान में यह रखना चाहिए कि काम पर से हमारी नजर न हटे । एक-के-बाद-एक आदमी तैयार रखना चाहिए । हमें कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि शान्तिपूर्ण हमारी मातृभूमि पर यह एक आपत्ति है । हमें इन्हें जड़ से खोदकर ही फेंक देना चाहिए । वे यह जानते हैं कि शस्त्रों की शक्ति कितनी ही अधिक क्यों न हो, फिर भी मनुष्य की शक्ति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता । इसीलिए स्वतन्त्र भारत का नाम ले रहे हैं वे । जिस तरह यहाँ धोखा दे रहे हैं, उसी तरह वहाँ भी धोखा देने लगेंगे···

यह नहीं होने देना चाहिए। भारत तक पहुँचाना चाहिए ये परचे··· समझी? भारत मे ही नाश होगा इन जापानियों का, यह जँचा देना चाहिए सारे भारतीय सैनिकों को! अब वे निकल ही पड़े हैं लड़ाई पर···तो उनसे कहना, जाओ चुपचाप और ज्योंही वहाँ पहुँचो तो जाग जाना। दुश्मनों को भारत की सीमा के भीतर कदम ही न रखने देना, समझी? यह ठीक से ध्यान में रखो। और इसी ढंग से काम जारी रखना। हमें अब मालूम हो चुका है कि परचों का असर हो रहा है···इसीलिए यह काम एक दिन के लिए भी बंद न होना चाहिए।

अमला : *यह तो बड़ी जिम्मेवारी का काम है। निभा सकूँगी मैं?*

शान्ताराम : *और यह भी तो है तेरे साथ। मैं चाहे चला जाऊँ, पर इसे कोई नहीं पकड़ेगा···*

अमला : *और कहीं मुझे ही पकड़ लिया तो?*

शान्ताराम : *तुझे नहीं पकड़ेंगे वे। तू यहाँ मत रहना। अपने घर चली जा। वहाँ तुझे कोई भय नहीं। तारासिंह पर विश्वास है उनका। मैं देख रहा हूँ कल से—बहिन को उन्होंने भले ही पकड़ लिया हो, पर भाई पर उनका विश्वास है। ऐसी ही भूलें तो हो जाती हैं राजनीति में। तू वहाँ रहना—यहाँ न आना। यह आती रहेगी तेरे घर। सदानन्द से कुछ न कहना। उसे यह बात जँचेगी नहीं। वह सच्चा नौकर है—बड़ा ईमानदार—इसीलिए तो उसे डिक्रूज पर शक हुआ!*

अमला : *अच्छा!*

सावित्री : *तारासिंह क्यों नहीं आया अभी तक? शायद सदानन्द की डिक्रूज से भेंट नहीं हुई?*

शान्ताराम : *अब तुम किसी के बारे में कुछ सोचो ही नहीं—मेरे बारे में भी नहीं—मुझे भी गया हुआ ही समझो—अब केवल एक ही बात ध्यान में रखो—भारतमाता की सेवा—भारतमाता की रक्षा। मातृभूमि पर हमें किसी का भी आक्रमण नहीं होने देना है। सिर्फ इसी काम के लिए जिन्दा रहना है हमें और इसी के लिए मरना है।*

[शान्ताराम बोलता रहता है। उसी समय तारासिंह प्रवेश करता है। सावित्री और अमला शान्ताराम को बातों को आँखों में प्राण समेट कर सुनती रहती हैं। उसके आने का उन्हें पता नहीं चलता। एक क्षण-भर के लिए रुक कर वह द्वार के पास खड़ा होकर अमला को पुकारता है।]

तारासिंह : *अमला—*

अमला : (चौंककर उठती है और उसकी ओर जाती हुई) *जी!*

तारासिंह : *घर चलो।*

अमला : *जी।* (पीछे मुड़कर देखती है और कहती है) *काका, मैं जाती हूँ—मौसी, मैं जा रही हूँ—*

शान्ताराम : *तारासिंह—इधर आओ।*

तारासिंह : (अकड़कर) *क्या काम है?*

शान्ताराम : *काम तो कुछ नहीं है। सिर्फ तुमसे बात करना चाहता हूँ।*

तारासिंह : *क्या बात करना चाहते हैं?*

शान्ताराम : *जब तक सुनोगे नहीं तब तक कैसे जानोगे उसे? इधर आओ!···अरे भाई, तुम हमारे दामाद हो न? बेटी का ब्याह कर देने पर माँ-बाप कोई श्राद्ध नहीं कर डालते बेटी का! कुछ-न-*

कुछ सम्बन्ध तो बना ही रहता है न ? उसके माँ-बाप भले ही न हों, फिर भी उनकी जगह हम तो हैं ?…कम-से-कम यह तो मानते हो या नहीं ?

तारासिंह : (अमला का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़कर) क्या है ? जो कहना चाहते है, चटपट कह दीजिए।

शान्ताराम : वहाँ बैठो—तू भी बैठ। यदि चटपट कह देने लायक कोई बात होती तो मैं कहता ही नहीं। बैठ जाओ वहाँ।

तारासिंह : (बिल्कुल सहज-भाव से बैठते हुए) हाँ। फरमाइए अब।

शान्ताराम : चौबीस घंटे के भीतर तुम्हारा स्वभाव बदल गया। चौबीस घंटे पहले तुम मेरे लिए प्राण देते थे—अब ऐसी कौनसी बात हो गयी है ?

तारासिंह . यह आप पूछ रहे हैं ? हमारी सुख की गृहस्थी में आपने आग लगा दी और अब आप ही मुझसे उसका कारण पूछ रहे हैं ?

शान्ताराम : तुम्हारी सुख की गृहस्थी मे मैंने आग लगा दी ! सो किस तरह ?

तारासिंह : इस सिंगापुर में--नही-नहीं—शोनान में…

शान्ताराम : नहीं। पहला ही ठीक था। तुम सुखी थे इस सिंगापुर में। शोनान की क्या बात है, वह बताओ।

तारासिंह : बताने की क्या जरूरत है ? आपको सब मालूम है। भोली-भाली बेचारी रूपा ! उसकी नासमझी का आपने फायदा उठाया और उसे एक गलत राह पर ले गये। इस राज्य में क्या बुरा था ? खूब सुख में थे हम—पहले से भी अधिक सुख में थे।

देशभक्ति की बातें तो आप आज कर रहे हैं। आपसे हम अधिक देशभक्त थे और आज भी हैं। भारत को आज़ाद करने के लिए हम लड़ने जा रहे हैं...

शान्ताराम : *किस लिए जा रहे हो ?*

तारासिंह : *भारत को आजाद करने ..*

शान्ताराम : *नहीं—भारतवर्ष को जापान के मुँह में ठूँसने के लिए।...यह देशद्रोह है !*

तारासिंह : *आप सोचते हैं वैसा—मैं नहीं सोचता। मुझे विश्वास है कि बृहत्तर पूर्व-एशिया का सङ्गठन हुए बिना भारत आजाद न होगा।* (एकदम उठकर दूर खड़ा हो जाता है।)

शान्ताराम : *भारतवर्ष क्या इतना कमजोर है ? क्या तुम यह सोचते हो कि दूसरे की सहायता के बिना भारतवर्ष स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता ? चालीस करोड़ लोगों का देश...*

तारासिंह : *चालीस करोड़ निःशस्त्र लोगों का।*

शान्ताराम : *हाँ-हाँ—निःशस्त्र लोगों का। चालीस करोड़ निःशस्त्र लोगों के इस देश ने निःशस्त्रता के बल पर ही एक बार दुनिया को हिला दिया था। हम भारतवासियों की यह टेक है कि हम प्रजातन्त्र की शक्ति से अत्याचारी दुर्जनों को सही मार्ग पर लाते हैं—इस शक्ति की अभी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। अपने-आप को बौद्ध कहलाने वाले तुम्हारे इन जापानियों को क्या यह नहीं मालूम कि कलिङ्ग देश ने स्वयं अपनी बलि देकर अतुल प्रतापी अशोक को सही मार्ग बताया था। महान अघोर पंथी अशोक भी बुद्ध का अनुयायी बन गया था। तुम्हारे स्वामी, जो बुद्ध के अनुयायी हैं, बुद्ध का नाम लेकर, कपालिका से भी अधिक अघोरी कृत्य कर*

रहे हैं—यदि उन्हें बुद्ध का धर्म फिर से कोई सिखायेगा तो हम भारतवासी ही। यदि हमें आक्रमण ही करना होगा तो समता के नाम पर करेंगे। वहाँ एकतन्त्रवाद नहीं होगा—मानवता को कलंकित करनेवाला साम्राज्यवाद नहीं होगा···

तारासिंह : जापान में कम्यूनिस्ट नहीं हैं।

शान्ताराम : पागल हो तुम। कम्यूनिस्ट न हों, पर जापान में कम्यूनिज्म है—वह सर्वत्र है—प्रत्येक देश में है। जर्मनी तुम्हारे जापान का मित्र है--रूस और जर्मनी की लड़ाई हो रही है। तो फिर क्यों जी, जर्मनी की सहायता के लिए तुम्हारा जापान रूस पर आक्रमण क्यों नहीं कर देता? कभी पूछा था तुमने यह सवाल अपने टोजो से? बोलो न? अब क्यों चुप हो गये?

तारासिंह : इतनी गहराई में जाने की मुझे कोई जरूरत नहीं।

शान्ताराम : क्यों, जरूरत क्यों नहीं? भारत को स्वतन्त्रता देने जा रहे हो न? क्या जापान की काँख में घुस कर भारत को स्वतन्त्रता दोगे? थोड़ी-सी हलचल ही हुई थी, छोटे-मोटे दो-चार परचे ही निकले थे कि टोकियो छोड़कर तुम्हारे टोजो को सिंगापुर दौड़कर आना पड़ा। तुम सिर-फिरों के सामने भाषण देने पड़े। भारत को स्वतंत्रता देने की दुहाई दे कर वे तुम पर जादू कर रहे हैं—तुम पर एक नशा चढ़ा रहे हैं। वे कैसी स्वतन्त्रता देते है, यह मैंने ब्रह्मदेश में देख लिया है। क्या वैसी ही स्वतन्त्रता दोगे तुम भारत को? स्वतन्त्रता का नाम लेने से ही स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती·

तारासिंह : आपकी एक बात भी मुझे नहीं जँचती।

शान्ताराम : हाँ, तुम्हारे चेहरे से तो यही दिखता है। तुम हिंदुस्तान में पैदा नहीं हुए हो न? यदि तुम वहाँ पैदा हुए होते, तो मेरी बातें तुम्हें जँच जातीं। हम भारतीय किसी की मदद नहीं चाहते—किसी

की भी नहीं। सहायता का मूल्य चुकाने के लिए हमें अपने आपको गिरवी रख देना होगा—नयी गुलामी हमारी किस्मत से बँध जायगी···उस नयी गुलामी को प्राप्त करा देने के लिए ही क्या तुम जा रहे हो लड़ाई पर? क्या अपने ही भाई-बंदों पर गोलियाँ चलाओगे तुम?···(क्षण-भर स्तब्धता) रूपा को यह बात जँची, क्योंकि उसका मन गङ्गाजल की तरह निर्मल था। इसीलिए वह मुझे संकट में फँसा हुआ देखकर मेरे पास दौड़ आयी, नौकरी करती नहीं बैठी रही। बेचारी को बलि हो जाना पड़ा। पर अभी यह काफी नहीं हुआ। मुझे भी जाना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि मेरे ही लोग मेरे विरुद्ध हो जायेंगे और मेरा गला काटेंगे···इसीलिए यह गला खुला छोड़ दिया है। मैं कहता हूँ, अगर काटना ही चाहते हो, तो मेरा गला **तुम** काट लो—मैं हँसते हुए प्राण दे दूँगा···परन्तु बैरी के हाथ में मेरा गला सौंपने का पाप न करो। (ठहर जाता है।)

तारासिंह : अब तो सब कुछ कह चुके न? अब जाता हूँ मैं! चलो अमला!

शान्ताराम : जा अमला! पत्नी बनी है न उसकी। अब उसी की आज्ञा माननी चाहिए। जहाँ वह जाए वहीं तुझे भी जाना चाहिए। अब इसका कोई उपाय नहीं। जा अब। मेरी बातें तुम लोगों ने सुन लीं—बड़ा उपकार किया मुझ पर···मेरे मन का बोझ कुछ हल्का हो गया···यह कुछ कम नहीं। आज तुम पर मेरी बातों का प्रभाव पड़े या न पड़े, तुम्हारे कानों में मेरी बातें पड़ गयीं, यही कुछ कम नहीं। जाओ अब। (तारासिंह और अमला जाने लगते हैं।) कब आओगे फिर? (कुछ भी उत्तर न देकर वे दोनों चल देते हैं।)—अब तुम और मैं···बस हम दोनों ही हैं! सदू नहीं...

िसी की मदद नहीं अब...(उठकर एक बार दरवाजे के बाहर जा कर ख आता है।) चले गये दोनों...दृष्टि से ओझल हो गये। अब ब तक कम-से-कम मैं हूँ, तब तक तो तुम्हारी और उसकी भेंट होगी। (विचित्र रूप से हँसकर) यह मज़ा है! क्यों, बोलतीं यों नहीं?

ावित्री : क्या बोलूँ? अब क्या बचा है बोलने को? जहाँ आस-ान ही टूट पड़ा है, वहाँ अब क्या बोलूँ और क्या कहूँ? सदू भी हीं आया अभी तक। कैसा उदास लग रहा है यह घर। ऐसा ागता है कि एकदम कोई भीतर घुस आएगा और... (एकदम ठकर शान्ताराम के पास जाकर)...क्या करेगा?

ान्ताराम : क्या करेगा? बहुत हुआ तो मुझे पकड़कर ले जाएगा।

ावित्री : और क्या मुझे भी पकड़ कर ले जाएगा?

ान्ताराम : यह कौन कह सकता है? शायद तुम्हें भी पकड़कर ो जायें! कुछ नहीं कहा जा सकता। सङ्कटकालीन स्थिति है यह। स समय कोई किसी पर दया नहीं करेगा। देखो न, सदानन्द ने ह मोड़ लिया···तारासिंह भी हमारे विरुद्ध हो गया।

ावित्री : और डिक्रूज?

ान्ताराम : उससे मेरी मुलाकात नहीं हुई। एक बार उससे मुला-ात हो जानी थी। उसकी परीक्षा लेना रह गया है। मुझे उसका ड़ा विश्वास है। लगता है कि आज तक उसी ने हम सबको भाल रखा है...उसने चुगली नहीं की, यह निश्चित है...ऐसे ोग अपनी सज्जनता का परिचय अपने मुँह से नहीं देते। गुप्त ान करनेवालों की तरह होते हैं ये लोग—उनके दान का दुनिया ो पता ही नहीं चलता ··(सदानन्द जल्दी में आता है।) आ गये म? क्या खबर है?

सदानन्द : *किसी का कोई पता नहीं चलता। डिक्रूज का भी कोई पता नहीं, जाने कहाँ गायब हो गया? घर में नहीं—आफिस में नहीं और अपने क्लब में भी नहीं। शायद पकड़ लिया गया हो वह।*

शान्ताराम : *उसे क्यों पकड़ेंगे?*

सदानन्द : *हाँ, यही तो मुझे भी लगता है?* (शान्ताराम हँसता है।) *क्यों हँसे?*

शान्ताराम : *कोई खास बात नहीं···सहज हँसी आ गयी मुझे··· दिमाग पर अब मेरा काबू नहीं रहा···पर यह न समझ लेना कि मैं पागल हो गया हूँ···वैसे मैं अच्छी तरह होश में हूँ। परन्तु बड़ा मज़ा आ रहा है आज! रूपा चली गयी, इसलिए तारासिंह चिढ़ उठा है···तुम भी चिढ़ गये हो क्योंकि तुम्हारी वह पत्नी थी। परंतु मेरी जो एक सहायिका चली गयी है, इसका किसी को भी कोई दुख नहीं···मुझे भी नहीं—इसी पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। तुम दोनों चिढ़ गये हो, पर मुझे चिढ़ क्यों नहीं आती? उल्टे, मुझे बड़ी खुशी हो रही है। लगता है जैसे मेरी गोली ठीक निशाने पर लगी है—इसलिये खुशी हो रही है मुझे। तुम्हारे टोजो को सिङ्गापुर में आना पड़ा न? क्या तुम गये थे उसका भाषण सुनने?*

सदानन्द : *मेरा काम ही है वह। अनुवाद करके बताना पड़ता है न मुझे?*

शान्ताराम : *अच्छा? तो कहना चाहिए कि तुम आधे टोजो ही हो।*

सदानन्द : (बड़ी कठोर नजर से देखता हुआ शान्ताराम के सामने आकर)··· *जले पर इस तरह नमक छिड़कने से आपको क्या मिलता है, काका? क्या आप सोचते हैं कि मेरे पास हृदय ही नहीं!*

शान्ताराम : *है जी…तुम्हारे पास हृदय है…परन्तु वह शोनानी हृदय है…सिङ्गापुरी नहीं…कोल्हापुरिया नहीं…भारतीय तो है ही नहीं……*

सदानन्द : *आग लगा दो अपने उस भारत को।*

शान्ताराम : *सो तो कर ही रहा है तुम्हारा टोजो। वह आग लगाना चाहता है और मैं उसे बुझाना चाहता हूँ। तुम जैसे लोग जो हो न बीच में?…वे मुझे बुझाने नहीं देते…*

सदानन्द : (चिढ़कर) *अब तो हद हो गयी! सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होती है। लगता है प्रेम और स्नेह के सारे बन्धनों को तड़ातड़ तोड़ डालूँ…*

शान्ताराम : *और जाकर एकदम रिपोर्ट कर दूँ। यही लग रहा है न तुम्हें? ठीक है। मै कपड़े पहन कर तैयार हो जाता हूँ।* (भीतर जाता है।)

सावित्री : *क्योंजी सदू, मनुष्य के मन को परख भी न सके तुम?*

सदानन्द : *अब मुझ में इंसानियत ही नहीं रह गयी है। संकटों की पराकाष्ठा हो गयी है। जिसे अपनी बनाया था उससे भी वंचित हो गया हूँ!…*

[वह एकदम बाहर चला जाता है। सावित्री द्वार के पास जाकर देखती है।]

[परदा गिरता है। तीन दिन की अवधि दिखाने के लिए तीन मिनट तक परदा गिरा रहता है।]

[जब परदा उठता है, उस समय बैठकखाने में अँधेरा रहता है। बाहर जाने की तैयारी से पोशाक पहने हुए शान्ताराम निर्विकार वृत्ति से कोच पर बैठा हुआ है। इसी समय सावित्री बाहर से आती है—स्विच दबा-

कर रोशनी जलाती है। इधर-उधर देखती है और जब उसे कोई नहीं दिखता तो घबड़ा जाती है। दृष्टि शान्ताराम पर पड़ते ही वह दौड़कर उसके पास जाती है।]

सावित्री : (रोआँसी होकर)···*उसने मुझे घर में भी नहीं घुसने दिया।*

शान्ताराम : (शान्ति से) *ठीक है!*

सावित्री : *ठीक क्या है? मिलने गयी थी न, मैं अमला से-अपनी बेटी से?*

शान्ताराम : (शान्ति से) *ठीक है!*

[चिढ़कर वह एक ओर जाकर बैठ जाती है। क्षण-भर के लिए दोनों चुप रहते हैं।]

शान्ताराम : *अब नाराज क्यों होती हो? जिस दिन ब्याह हो गया, उसी दिन से उस पर जो हमारा अधिकार था, वह भी समाप्त हो गया—स्वयं उसका भी अपने-आप पर कोई अधिकार नहीं रहा।*

सावित्री : *आप मुझसे इस तरह कभी पेश नहीं आये थे।*

शान्ताराम : *वह मेरी भूल थी। मैं दुनिया की रीति के विरुद्ध बर्ताव करता था। दुनिया की रीति के विरुद्ध बर्ताव करने का पागलपन मुझ पर सवार हो गया है। मैंने अपनी ऐसी धारणा बना ली है कि मैं दुनिया से भी अधिक समझदार हूँ। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि मेरी यह धारणा सच है! कभी-कभी मेरे अंदाज़ गलत हो जाते हैं। परन्तु यह सच है कि दुनिया से मेरी दृष्टि भिन्न है।*

सावित्री : *तो अब हमें क्या करना चाहिए?*

शान्ताराम : *हम क्या कर सकते हैं? अगर आ गयी, तो हमारी*

है। न आयी तो···वह एक ब्रह्मदेश में रह ही गयी है न ?

सावित्री : उसी तरह क्या इसे भी मानें ?

शान्ताराम : बेशक !

सावित्री : कितने निष्ठुर हैं आप ?

शान्ताराम : सो तो हूँ ही ! हमारे साथ इतने दिन रहने पर भी क्या तुमने यह नहीं जाना ?

सावित्री : आप तो यूँ ही कुछ कह देते हैं !

शान्ताराम : आज तीन दिन हो गये। सदानन्द गया है···उसका अभी तक पता नहीं। डिक्रूज ने बताया, इसलिए मालूम हुआ कि वह वहाँ है···डिक्रूज अभी पकड़ा नहीं गया है, इसीलिए तो यह पता चला। वर्ना हमें कौन आकर बताता ? यहाँ किससे हमारी पहचान है ? एक दूसरे का मुँह ताकते हुए आज तीन दिन से बैठे हुए हैं हम। बाहर क्या हो रहा है इसका कोई पता नहीं हमें। रूपा की चिन्ता लग रही है मुझे · और तुम अमला की चिन्ता लिये बैठी हो !

सावित्री : ऐसा क्यों कहते हो ? रूपा के लिए ही तो मैं अमला के घर गयी थी न ? तारासिह और अमला, दोनों घर में थे। एक-दो जापानी भी बैठे हुए थे वहाँ···क्या इसीलिए उसने मुझे भगा दिया ?

शान्ताराम : हाँ, अब इसी तरह अपने मन को समझा लो। यह देखकर भी कि इधर वह मुझसे किस तरह पेश आया था, तुम उसके दोषों पर परदा डालना चाहती हो ?

सावित्री : मन बड़ा लालची होता है न ? जब तक पूरी तरह से विश्वास नहीं हो जाता कि वह दोषी है, तब तक उसे दोषी कैसे कहा जा सकता है ?

शान्ताराम : (एकदम उसकी ओर मुड़कर और उसकी आँखों में आँखें डालता हुआ) *देखो · मेरी सुनो···सबको भूल जाओ···मुझे भी भूल जाओ। रंगून में उस प्रकार के बम गिरे थे समझ लो यहाँ इस प्रकार के बम गिरे। यह अच्छी तरह समझ लो कि हम सब मटियामेंट हो गये है। मन को जब इतना तैयार कर लोगी, तो फिर दुख न होगा।*

[वह सुन्न-सी होकर स्तब्ध बैठ जाती है। शान्ताराम उठ कर द्वार की ओर जाता है। झाँककर देखता है और फिर लौट पड़ता है। क्षण-भर के लिए इधर-उधर टहलता है। फिर द्वार के बाहर जाकर देखता है और एकदम चौंककर चार कदम पीछे हट जाता है। इसी समय सदानन्द भीतर आता है। दोनों क्षण-भर के लिए एक दूसरे की ओर देखते हैं। सावित्री चौंकती है और उठकर खड़ी हो जाती है।]

सदानन्द : *अभी तक हो यहाँ ?*

शान्ताराम : *तो जाएँगे कहाँ ? घर के मालिक तुम हो···तुम्हारे घर को यूँ सूना छोड़कर चला जाता···अभी इतना गृहस्थ-धर्म मैं भूला नहीं हूँ !*

सदानन्द : *बड़ा उपकार किया आपने मुझ पर। अब आ गया हूँ मैं······*

शान्ताराम : *तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हम लोग अब जाएँ ?*

सावित्री : *कहाँ ?*

शान्ताराम : *वह भी पूछूँगा···*(सदानन्द से) *बोलो न ?* (सदानन्द चुप रहता है।) *आओ, बैठो यहाँ···हम जिस दिन आये थे, उस दिन की याद है ? कितना आनन्द हुआ था तुम्हें ? तीन महीने में*

ही वह आनन्द मिट्टी हो गया…चारों के मुँह चार दिशाओं को हो गये……

सदानन्द : किसके कारण ?

शान्ताराम : मेरे कारण !·यहाँ आया, यही मैंने गलती की…कम-से-कम तुम्हारे घर नहीं आना था…

सदानन्द : ऐसा अब लग रहा है मुझे भी। उस समय नहीं लगा था। उस समय तो आनंद से फूला नहीं समाता था मैं। मुझे लगा था, जैसे मेरे घर बहार आ गयी है। अब सारी गृहस्थी धूल में मिल गयी है।

शान्ताराम : लड़ाई शुरू होने से पहले ही ! ब्रह्मदेश मे प्रत्येक का घर-बार चौपट हो गया है…परन्तु इसलिए कि वहाँ लड़ाई हुई थी। यहाँ तो अभी कुछ भी नहीं हुआ। एक ही क्षण के लिए आँखें मूँदीं और फिर खोल दीं…थोड़ी-सी उलट-पुलट ही दिखायी दी…पहले से अच्छी नौकरियाँ मिल गयीं तुम नौकरों को…खुश हो गये तुम…

सदानंद : इसमें बुरा क्या हुआ ?

शान्ताराम : यह मैं कैसे कहूँ ? मेरा अनुभव भिन्न है। मैं रंगून में एक विख्यात संपादक था। यदि तुम्हारी तरह, नौकरी बदलने के लिए मैं तैयार हो जाता, तो आज बड़े मज़े में रहता। यदि जिनकी प्रशसा करता था उनकी निंदा करता और जिनकी निन्दा करता था उनकी प्रशंसा करता तो तुमसे भी अधिक सुख में रहता। परन्तु यह वृत्ति मुझमें नहीं। जो कुछ मेरी बुद्धि को नहीं जँचता, उसे मैं कभी नहीं करता, चाहे मुझे सोने का सिंहासन क्यों न ठुकरा देना पड़े, इतना मूर्ख हूँ मैं…इसीलिए यहाँ चला आया ! सुनते हो न ?

सावित्री : क्यों उन बातों को दुहरा रहे हो ? क्या प्रभाव पड़ेगा

उसका ? हम पर सचमुच आसमान टूट पड़ा है। दुनिया में अब कोई नहीं जिसे हम अपना कह सकें।

शान्ताराम : है। जिसे हम अपना कह सकते हैं, वह अब एक ही बचा है, और वह है अपना कर्तव्य···मातृभूमि की सेवा के लिए अपने आपको समर्पण कर देने का व्रत अभी पूरा करना है हमें··· इसीलिये यहाँ आया था···वर्ना और कहाँ जाता ? मेरे आत्मीय यहीं थे······

सदानन्द : फिर उन्होंने क्या आपको आश्रय नहीं दिया ?

शान्ताराम : हाँ बाबा ! आश्रय दिया। यही तो भूल कर दी उन्होंने। यदि दूर कर देते तो इस सिङ्गापुर की किसी गुफा में···

सदानन्द : शांनान की ··

शान्ताराम : नहीं ··सिङ्गापुर की किसी गुफा में छिपकर जो करना चाहता था करता, जिससे उसकी आँच तुम आत्मीयों को न लगती। परन्तु अब वह लग ही गयी है···क्षमा माँगता हूँ तुमसे— बड़ा अपराधी हूँ मैं !···रात हो गयी है, वर्ना हम इसी वक्त चले जाते। सिर्फ एक रात यहाँ बिताने की इजाजत दोगे क्या ? और क्या आज की रात तुम भी हमारे साथ यहीं रहने की कृपा करोगे ?

[सदानन्द उठकर धीरे-धीरे अपने लिखने की मेज की ओर आता है और कागज उलट-पुलटकर देखने लगता है।]

शान्ताराम : तो क्या तुम यह कहते हो कि हम लोग अभी चले जाएं ?

सावित्री : क्यों सदू, क्या तुम यही चाहते हो ? (सदानन्द कोई उत्तर नहीं देता) चलिए, तो हम लोग चल दें।

शान्ताराम : जाने की ही तो तैयारी कर रहा था मैं। सब सामान

बाँधकर भीतर रख दिया है। ले आओ उसे। (सावित्री भीतर जाती है।)

[सावित्री के सामान लाते तक स्तब्धता]

शान्ताराम : *अच्छा तो अब हम जाते हैं। जो कुछ हुआ है उसे भुला देना ··सुखी रहो···बृहत्तर पूर्व-एशिया-खंड का संगठन करने से पहले भारतवर्ष की याद रखना।*

[वे दोनों जाने लगते है। सदानन्द मेज के पास खड़ा है। वह मुड़कर पीछे भी नहीं देखता। वे दोनों पीछे न देखकर सामान हाथ में लिए जड़ पैरों से द्वार तक आते है और एकदम घबड़ाकर भयानक चेहरा बनाते हुए पीछे हटते हैं। उनके हाथ का सामान छूटकर नीचे गिर पड़ता है। एक क्षण के लिए उनकी टकटकी-सी बँध जाती है। इसी समय द्वार के समीप रूपा दिखायी देती है। उसका चेहरा विवर्ण हो गया है। बदन के कपड़े फटकर धज्जियाँ हो गये हैं। सिर के बहुत कुछ बाल पके हुए दिखायी देते हैं। सावित्री के मुँह से एक अस्फुट-सी चीख निकल पड़ती है। एकदम सदानन्द पीछे मुड़कर देखता है और रूपा को देखते ही जहाँ-का-तहाँ ठिठक-सा जाता है। रूपा दो कदम आगे बढ़ती है। इसी समय शान्ताराम मन को सँभालकर शान्ति से कहता है।]

शान्ताराम : *क्या भाग आयी है ?* (वह धीरे-धीरे गर्दन के इशारे से 'नहीं' कहती है।) *क्यों छोड़ दिया तुझे ?*

[रूपा और शान्ताराम बातें करते हुए आगे बढ़ते हैं।]

शान्ताराम : *क्या तू ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया ?*

रूपा : (गहरी आवाज में) *नहीं।*

शान्ताराम : *नाम बता दिये ?*

रूपा : *नहीं।*

शान्ताराम : *फिर कैसे छोड़ दिया तुझे ?*

सदानन्द : *रूपा···रूपा, यह क्या दशा हो गयी है तुम्हारी ?*

रूपा : (उसकी ओर न देखकर)···*तुम चुप रहो !*

सदानन्द : *मैं चुप रहूँ ? मुझसे चुप रहने के लिए कहती है ?*

रूपा : (चिढ़कर) *चुप रहो। दूर हो जाओ।* (शान्ताराम से) *मैंने नाम नहीं बताये।*

शान्ताराम : *शाबास !*

[सावित्री रूपा के पास जाती है। उसे खींचकर अपने हृदय से लगा लेती है। रूपा एकदम गद्गद् होकर सावित्री के गले में बाहें डालकर रोने लगती है।]

सावित्री : *बेटी, मेरी प्यारी बेटी ! कुछ न बोल। कुछ न बता··* (शान्ताराम से) *पहले जरा इसे देखो तो फिर प्रश्न पूछना।* (उसकी चुबक के नीचे हाथ डालकर) *देखा ? बाल सफेद हो गये हैं चार दिन में ·····*

रूपा : (मद स्वर में) *चार दिन में नहीं एक रात में।*

शान्ताराम : *एक रात में ?*

सदानन्द : *एक रात में बाल सफेद हो गये ?*

रूपा : (चीखकर) *चुप रहो।* (सावित्रा से) *इन्हें यहाँ से हट जाने के लिये कह दीजिए।*

[सावित्री सदानन्द को आँख से दूर हट जाने का इशारा करती है।]

शान्ताराम : *कोई आश्चर्य नहीं ! जिंदा कैसे रही, यही आश्चर्य है। मर जाती तो मुझे अच्छा लगता।*

रूपा : *मर जाती तो मुझे भी अच्छा लगता ! परन्तु उस दुनिया में*

मरना भी बड़ा कठिन था—बड़ा कड़ा पहरा था उस जगह ··इसकी भी मैंने कोशिश की परन्तु उनके आगे एक भी न चली···

सावित्री : *किसकी कोशिश की ?*

रूपा : *मरने की। मर जाने को वे लोग सौभाग्य समझते हैं। आत्म-हत्या कर डालते हैं ऐसे समय। कहीं मैं भी आत्म-हत्या न कर लूँ, इसलिए मुझ पर लगातार कड़ी निगरानी थी उनकी···मुझे मरने नहीं दिया···सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए।*

शान्ताराम : *तुझ पर कोई छुपी नजर रख रहा था क्या ?*

रूपा : *मैंने देखा नहीं···सारा ध्यान इधर था मेरा···आपकी तरफ ! जब देख लिया कि आप यहाँ हैं, तो जी ठंडा हुआ···लगा, मेरा जीना सार्थक हो गया · अब मर जाऊँ तो कोई हर्ज नहीं।*

शान्ताराम : *उन लोगों ने तुझे छोड़ क्यों दिया ?*

रूपा : *यही मैं नहीं जानती। वे कभी इस तरह किसी को नहीं छोड़ते। मुझे छोड़ दिया है, इसलिए मेरा मन तड़प रहा है··· व्याकुल हो रहा है। क्यों छोड़ दिया ?* (सावित्री से) *आप मिल गयीं···सदा आप मेरी आँखों में झूलतीं थीं···लगता न था कि आप फिर मिलेंगीं। आप मिल गयीं !* (उसका दृढ़ आलिंगन करती है।) *अब कहीं छोड़कर न जाना मुझे।*

शान्ताराम : *कौन कह सकता है ? कौन किसे छोड़कर चला जायगा, यह कोई नहीं कह सकता। जिसे प्रलय कहते हैं, क्या वह यही है ? रोज आसमान टूट रहा है ··यहाँ···वहाँ बम बरस रहे हैं·· बम बरसानेवाले हवाई जहाज नीचे गिर रहे हैं···हवाई जहाज चलानेवाले गिर रहे हैं···नीचे और ऊपर सर्वनाश हो रहा है ·· तब अनर्थ लगता था। पर वह अनर्थ अच्छा था—यह अनर्थ महा*

भयंकर और अन्तिम अनर्थ है। हवाई जहाज नहीं, बम नहीं, तोपें नहीं…बेचिराग होनेवाला मुल्क भी नहीं…जिन्दा लोगों के जिंदा दिलों को चुटकी में पकड़कर मरोड़ रहे हैं। यह राक्षसीय चुटकी बाहरी दुनिया को नहीं दिख रही है। जिन्दा दिलों को महसूस होती है…जो मुर्दा दिल हैं, वे सिर्फ देख रहे हैं परन्तु उन्हें दिखता नहीं है…यह आखिरी मुँदी मार उन्हें दिखती नहीं है। यह सब कैसे सहन किया तूने मेरी बेटी…

[डिक्रूज एकदम दौड़ता हुआ भीतर आता है और उन्हें देखकर ठिठक जाता है।]

शान्ताराम : *कौन? मनू डिक्रूज?*

रूपा : (चौंककर पीछे मुड़कर देखती हुई) *मनू?*

सावित्री : *मनू?*

डिक्रूज : *हाँ, मैं! अभी तक बाहर हूँ। तीन दिन से छिप रहा हूँ। अब जाना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि कोई आकर मुझे यहाँ पकड़े।*

शान्ताराम : *क्यों?*

डिक्रूज : *उन्हें किसी कारण की जरूरत नहीं होती…और यहाँ तो भरपूर कारण हैं। मैंने क्या किया है, यह उन्हें मालूम हो गया है। घबड़ाओ नहीं—मैं बड़ा निर्दयी हूँ। मैंने एक बात सीखी है इन जापानी बन्दरों से…उनके हाथ न लगना चाहिए। आप निश्चित रहें। वे मुझे पकड़ने की कोशिश करें, फिर भी मैं उनके हाथ न लगूँगा।* (भीतरी जेब से पिस्तौल निकालकर शान्ताराम के हाथ में देता हुआ) *इसे रखिये अपने पास…* (दूसरा पिस्तौल निकालकर रूपा के हाथ में देता हुआ) *इसे तू रख अपने पास!*

रूपा : *थैंक्यू ! थैंक्यू !*

डिक्रूज : *अच्छा मैं जाता हूँ।* (एकदम चल देता है।)

सदानन्द : (एकदम रूपा के पास जाकर) *यह क्यों लिया ?*

रूपा : (उसकी ओर गर्दन फेरकर) *क्या तुम नहीं जानते ?*

सदानन्द : *नहीं !*

रूपा : *तो फिर चुप बैठो। व्यर्थ के प्रश्न न करो।*

सदानंद : *तारासींग मिला था तुम्हें ?* (वह कोई उत्तर नहीं देती।) *तुम्हारा भाई मिला था तुम्हें ?*

रूपा : *अब मेरा कोई भाई नहीं है।*

सदानन्द : *रूपा, यह क्या हो गया है तुम्हें। मुझ पर इस तरह नाराज क्यों हो रही हो ?*

रूपा : वह *रूपा मर गयी।—यह जो तुम्हें दिख रही है, उसे तुम नहीं जानते।*

सदानन्द : *यह क्या बक रही हो रूपा ? मैं तुम्हें नहीं जानता ?*

रूपा : *नहीं···जाओ यहाँ से···व्यर्थ समय नष्ट न करो।*

[सावित्री उसे हाथ से पकड़कर आगे लाकर बैठाती है और सदानन्द को दूर जाने का संकेत करती है। हाथ में रखे पिस्तौल से खेलती हुई रूपा बातें करती है।]

रूपा : *जिस दोस्त की जरूरत थी, वह मिल गया। अब मुझे किसी से भी डर नहीं।*

शान्ताराम : *इससे पहले किससे डर गयी थी ?*

रूपा : *डरी नहीं थी—परन्तु मुझे लग रहा था कि मैं निराधार हूँ। अब यह आधार मिल गया है। इसीलिए कहती हूँ कि अब मुझे किसी का भी डर नहीं।*

शान्ताराम : *डर का कारण ही समाप्त हो गया।*

रूपा : *कौन कह सकता है ?*

शान्ताराम : *मैं कहता हूँ···अब डर का कारण ही नहीं रहा! डिक्रूज गया···अब मैं भी जाऊँगा···तू छूट ही गयी है···*

रूपा : *कौन कह सकता है ? शायद फिर जाना पड़े मुझे।*

[तारासिंह एकदम दौड़ता हुआ आता है। अमला उसके पीछे-पीछे आती है।]

तारासिंह : *रूपा ? आ गयी तू ? घर क्यों नहीं आयी ?*

रूपा : *घर ही तो आयी हूँ·· यही है मेरा घर।*

तारासिंह : *रूपा !···*

रूपा : *हाँ ! यही है मेरा घर। अब मेरा दूसरा कोई घर नहीं।*

तारासिंह : (सदानन्द से) *क्यों, क्या यह बात है ? विवाह हो गया तुम्हारा ?*

रूपा : *यह रूपा अब किसी की भी गुलाम न बनेगी !*

तारासिंह : *रूपा, यह क्या कह रही है ? तेरे लिए मैंने इतना किया···*

रूपा : *क्या किया ?*

तारासिंह : *तुझे छुड़ा दिया।*

रूपा : *कैसे ?*

तारासिंह : *किसी भी तरह क्यों न हो ? तू छूट तो गयी ?*

रूपा : *परन्तु मुझे यह मालूम होना चाहिए कि मैं क्यों छोड़ दी गयी ?*

तारासिंह : *मैंने अफसरों पर अपना दवाब डाला······*

रूपा : बोलो…क्या किया तुमने ?…(तारासिंह स्तब्ध रहता है।) देखो मेरी ओर…मेरे चेहरे की तरफ…एक रात में पक गये हैं ये बाल…पीठ खोलकर दिखाऊँ तुम्हें ! संगीन की नोंक से किस तरह छलनी हो गयी है मेरी पीठ…देखना चाहते हो ? उनके तरीके जानते हो न तुम ?…वे सारी यंत्रणायें मैंने बरदाश्त की हैं…वे सारी विडम्बनायें मैंने सही हैं, परन्तु मैंने मुँह नहीं खोला…प्राण व्याकुल हो रहे थे, फिर भी एक शब्द भी न कहा मैंने…(एकदम जाकर तारासिंह का हाथ पकड़कर) और तुमने कह दिया ?है न ?

तारासिंह : अपनी प्यारी बहिन के लिए…

रूपा : तुमने विश्वासघात किया ! मैंने मुँह बन्द रखा…देह की धज्जियाँ उड़ रही थीं…मैंने सब सहन किया और तुम्हारा थोड़ा भी नुकसान न होते हुए भी तुमने सब कुछ बता दिया ?

तारासिंह : जो सच था वह मैंने कह दिया।

रूपा : तुमने सब सच नहीं कहा। तुमने सिर्फ (शान्ताराम की ओर अँगुली दिखाकर) इनका नाम बताया। मैं क्या करती थी, वह तुमने बताया। क्या तुम नहीं जानते थे ? या कि जानते भी जान-बूझकर झूठ बोले ?…मेरे गुनाहों पर परदा डाला…ये अगर गुनहगार हैं…तो इनसे ज्यादा गुनहगार मैं हूँ। जो इनसे नहीं हो सकता था, वह सब काम मैं करती थी……

तारासिंह : इनके कहने से ही तो करती थी……

रूपा : नहीं…मुझे जँचता था इसलिए करती थी…मेरे हृदय में उस काम के लिए तड़पन थी…मैं महसूस करती थी कि जो मैं कर रही हूँ, वह एक अच्छा काम है…तुमने उन लोगों से कहा · ये गुनहगार हैं, मैं बेगुनाह हूँ…इन्होंने मुझ पर जादू कर दिया है—

इन्होंने मुझे धोखा दिया है · ऐसा कहकर तुमने मुझे छुड़ाया है ! है न ? (तारासिंह स्तब्ध रहता है ।) तो लो, अब सुन लो । इनके पकड़े जाने के बाद भी मैं वह काम करती रहूँगी ।

तारासिंह : नहीं रूपा ··

रूपा : चुप रहो । मैं तुमसे फिर कहती हूँ—इनके पकड़े जाने के बाद भी इनका काम मैं करती रहूँगी । तुम भूल रहे हो···बैरियों के चँगुल में फँस रहे हो ··देशोद्धार की मिथ्या कल्पना से तुम बैरियों को अपने हाथ से अपने घर में घुसा रहे हो । यह उद्धार नहीं हमारी मातृभूमि का ! तुममें से हर व्यक्ति को मुझे यही जँचा देना है कि तुम लोगों की यह कल्पना बिल्कुल थोथी है । मुझे छोड़ दिया है तो मैं यही काम करती रहूँगी

तारासिंह : यह कैसी नासमझी है रूपा ? ·

रूपा : नासमझी तुम कर रहे हो । बन्धु-द्रोही हो गये—देशद्रोही हो गये—अभी-अभी अंकुर जमना शुरू हुआ था कि उसे जड़ समेत उखाड़ने का प्रयत्न करके अपनी मातृभूमि की दृष्टि में तुम विश्वासघाती सिद्ध हुए जाओ ··मुझे अपना मुँह भी न दिखाना । तुम मेरे भाई नहीं और न मैं तुम्हारी बहिन !

अमला : (तारासिंह से) क्यों, क्या तुमने काका का नाम बताया ?

तारासिंह : मैंने ही क्यों ? तुम्हारे भाई ने भी गवाही दी । यूँ ही नहीं छोड़ दिया उन्होंने इसे ।

अमला : (सदानन्द से) क्यों, क्यों दादा ? (सदानन्द स्तब्ध रहता है ।) अधम हो ! नीच हो ! पापी हो !

सदानन्द : (तारासिंह की ओर अँगुली दिखाकर) और यह ?

अमला : तुम दोनों एक से हो । जाओ · दोनों जाओ···काला मुँह

करो ! प्यारी बहिन ! मुझे भी वह प्यारी लगी…बहिन से भी अधिक प्यारी लगी — काका का काम कर रही थी इसलिए प्यारी लगी ! और तुम बड़े ताव से कह रहे हो…प्यारी बहिन !

तारासिंह : *वह बहिन ही है मेरी। उसकी और मेरी रगों में एक ही खून दौड़ रहा है…खून के लिए खून बोल उठा !*

शान्ताराम : *जिसने मातृभूमि की सेवा के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया हो, उसके सारे नाते टूट जाते हैं। वह किसी का कोई नहीं होता…वह किसी की बहिन नहीं, माँ नहीं, बाप नहीं, उसके कोई जात-पाँत नहीं, कोई गोत नहीं…कुछ नहीं। उसकी एक ही माँ होती है—मातृभूमि…इसके सिवा वह कोई नाता नहीं मानता। यह संन्यास है, तारासींग !…सुना सदानन्द, सन्यास है ! मातृभूमि की सेवा के लिए जो आगे बढ़ जाता है, उसका उसी क्षण श्राद्ध हो जाता है। वह किसी का कोई नहीं होता—वह होता है मातृभूमि का एक सुपुत्र……*

तारासिंह : *अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए ही हमने जापानियों के हाथ में हाथ डाला है।*

शान्ताराम : *तुम भूल कर रहे हो। अपने घर की आग पराये घर की आग से नहीं बुझा करती। जलती हुई आग, आग से नहीं बुझती…उस पर पानी डालना पड़ता है…खून बहाना पड़ता है……*

तारासिंह : *वही तो करनेवाले हैं हम।*

सन्ताराम : *तुम ? कौन तुम ?*

तारासिंह : *हम, हम हिन्दुस्तानी…विदेश में आकर बसे हुए हम हिन्दुस्तानी…*

शान्ताराम : क्या तुम अकेले ही ?

तारासिंह : नहीं···हम निःशस्त्र थे·····जापान ने हमें सशस्त्र कर दिया। उन शस्त्रों को लेकर हम··· ···

शान्ताराम : व्यर्थ की बातें न बक, पागल लड़के ! उन शस्त्रों का मूल्य क्या तुम भारतमाता को गुलामी की जंजीरों में जकड़ कर चुकाओगे ? कोई किसी की मुफ्त में मदद नहीं करता। अपने स्वार्थ के लिए ही जापान ने तुम्हें अपने हाथ का खिलौना बनाया है और तुम्हें नचा रहा है। तुम मुट्ठी भर और वे असंख्य ! ढाल के रूप में वे तुम्हें आगे बढ़ा रहे हैं। खून बहेगा **तुम्हारा** और विजयी होंगे **वे**। इसमें कहाँ तक तुम्हारी मातृभूमि का कल्याण होगा ?

तारासिंह : वह अब प्रत्यक्ष दिख ही जायगा।

शान्ताराम : वह तो मैं देख ही रहा हूँ। ब्रह्मदेश में देख लिया है और इसीलिए कह रहा हूँ। हमें परायों के शास्त्रों की जरूरत नहीं। हम अकारण किसी को मारना नहीं चाहते। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए हम स्वयं अपना रक्त बहाएँगे। दूसरों की स्वतन्त्रता छीनने के लिए हम किसी पर वार न करेंगे ! हमारे अनेक वर्षों का पाप रक्त की गंगा में धुल जायगा। भारत-भूमि का मुख उज्ज्वल होगा। परायों के शस्त्रों से शत्रुओं का नाश नहीं होता···नये शत्रु पैदा होते हैं। हम किसी से भी बैर नहीं करना चाहते···हमें किसी से भी नहीं लड़ना है ; हमें लड़ना है अपने अज्ञान से। प्रेम के अमोघ शस्त्र से ही हम सारे विश्व पर विजय प्राप्त करेंगे। यह असत्य नहीं···सत्य है···मूर्तिमान सत्य है और इस सत्य के बल पर ही हम स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे। हमें किसी भी विदेशी की मदद नहीं चाहिए ···

तारासिंह : *तनिक मेरी भी तो सुनिए " "'*

शान्ताराम : *चुप रहो।*

तारासिंह : *जरा ठहरिए...बिना कहे चारा नहीं। वे आपको पकड़ने आ रहे हैं।*

शान्ताराम : *मैं जानता हूँ।*

तारासिंह : *तो जो तैयारी करनी हो कर लीजिए*

शान्ताराम : *वह तो पहले ही कर ली है। चाहे जब जाने को तैयार बैठा हूँ मैं। कठिन से कठिन यंत्रणा सहन करने के लिए मैंने अपने मन को तैयार कर लिया है...लेकिन अब उसकी भी जरूरत नहीं रही। अब बिल्कुल निश्चिन्त हो गया हूँ मैं। है न रूपा?* (रूपा हँसती है।) *देखो, यह हँसी। बिना आनन्द के कोई नहीं हँसता। आनन्द चरम सीमा को पहुँच गया है इस समय...है न रूपा?*

रूपा : *हाँ, गुरुदेव।*

शान्ताराम : *कहाँ जाना है? कब जाना है?*

[सिपाही प्रवेश करते हैं।]

शान्ताराम : (पीछे मुड़कर सावित्री की ओर देखता हुआ) *सावित्री, भाग्यशालिनी हो तुम—अखंड सौभाग्यवती हो! आज तुम्हारा सौभाग्य अटल हो जायगा। मातृभूमि के लिए अपना बलिदान देकर आज तुम्हारा पति अमर होने जा रहा है न!*

सावित्री : *सच है। मातृभूमि के चरणों में आज मैं अपना सर्वस्व निछावर कर रही हूँ।*

शान्ताराम : *तुम्हारे इस त्याग के पुण्य से मेरी मातृभूमि स्वतंत्र हो।*

रूपा : *तथास्तु।*

शान्ताराम : *अमला, मै जा रहा हूँ। भूल मत जाना। अखण्ड ज्योति को खंडित मत होने देना। चलो···अब ले चलो मुझे जहाँ तुम्हारा जी चाहे।*

[सिपाही उसे पकड़ने के लिए आते है तो वह उनके हाथ दूर कर देता है और सीना तानकर उनके आगे-आगे चलने लगता है। सिपाही उसके पीछे-पीछे जाते हैं।]

रूपा : *ठहरिए···मैं भी आयी···* (वह दौड़ती हुई बाहर जाती है।)

तारासिंह : *रूपा-रूपा ! तू कहाँ जाती है ?*

[तारासिंह दौड़कर जाने लगता है। त्योंही रूपा लौटकर बाहर से दरवाजा लगा लेती है। आकाश में हवाई जहाजों की "घर्रघर्र" आवाज सुनाई देती है। वह आवाज बढ़ने लगती है। इसी समय एक-के-बाद-एक गोलियाँ चलने की दो आवाजें सुनायी पड़ती हैं।]

सावित्री : *सुन अमू, सुन ! स्वर्ग का द्वार खुलते समय इसी प्रकार की आवाज होती है···है न ?*

(परदा गिरता है।)